पाञ्चजन्य का अनुनाद

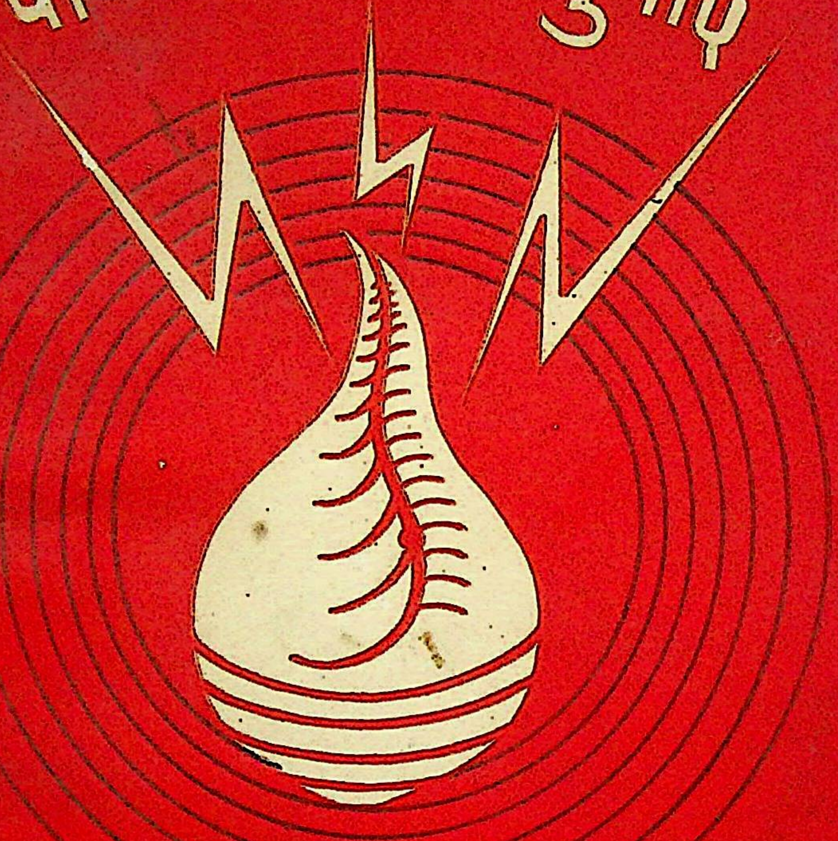

विमला ठकार

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैश्विक नृत्य व नाट्य

स्वलेख संग्रह

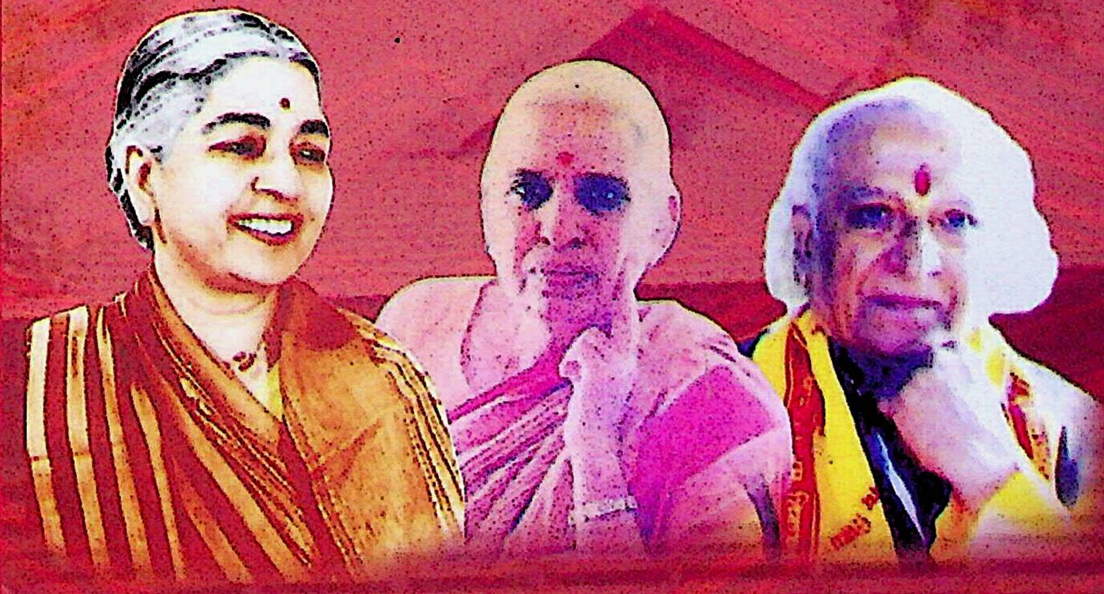

पी. मेदिनी होम्बल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

5·5

आदरणीया
उर्मिला बहिनजी को
सादर समर्पित.

मेदिनी होम्बल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैश्विक नृत्य व नाट्य

स्वलेख संग्रह

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैश्विक नृत्य व नाट्य

स्वलेख संग्रह

पी. मेदिनी होम्बल

Luminous Books
Varanasi

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वैश्विक नृत्य व नाट्य

स्वलेख संग्रह

पी. मेदिनी होम्बल

प्रकाशकः

लुमिनस् बुक्स

बी. 2/236, भदैनी, वाराणसी-221001

मो. 08127529788, 09839738167

Email : luminousbooksindia@ymail.com

प्रथम संस्करण, सन् 2018

© पी, मेदिनी होम्बल

ISBN : 978-93-8514-972-6

प्रस्तुत पुस्तक का पुर्नप्रकाशन, किसी भी प्रकार का आंशिक या पूर्ण प्रकाशन, इलेक्ट्रॉनिक प्रयोग, छायाचित्र या किसी अन्य माध्यम से उपयोग आदि, विशेषज्ञ के समीक्षा के अलावा, प्रकाशक की लिखित पूर्वानुमति के बिना कानून का उल्लंघन है।

भारत में मुद्रित

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रो. पं. चित्तरंजन ज्योतिषी 'चित्तरंग'
पूर्व कुलपति
राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं कला
विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म.प्र.)
Prof. Pt. Chittaranjan Jyotishi 'Chittarang'
Ex. Vice-Chancellor
RAJA MANSINGH TOMAR MUSIC &
ARTS UNIVERSITY, GWALIOR (M.P.)

पूर्व विभागाध्यक्ष गायन (संगीत) एवं पूर्व संकाय प्रमुख
संगीत मंच कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उ.प्र.) भारत
Ex. Head Deptt. of vocal Music &
Ex. Dean Faculty of Performing Art
Banaras Hindu University, Varanasi (U.P.) India

Ref. No.......................   Date..........................

<u>शुभाशंसा</u>

चि. पी. मेदिनी होम्बल विख्यात नर्तक दम्पत्ति श्री प्रेमचन्द होम्बल श्रीमती माला होम्बल की सुयोग्य पुत्री एवं दादा स्व. श्री शंकर होम्बल एवं श्रीमती गिरिजा होम्बल की पौत्री है। भरतनाट्यम् नृत्य के प्रायोगिक एवं सैद्धांतिक दोनों पक्षों पर समान अधिकार रखती हैं।

सुश्री पी. मेदिनी होम्बल को मैंने बाल्यावस्था से ही उत्तरोत्तर प्रगति करते हुए देखा है। मुझे अत्यंत हर्ष हो रहा है कि सुश्री पी. मेदिनी होम्बल के स्वलिखित कुछ निबन्धों का विधिवत् प्रथम संकलन स्वलेख संचय "World Dance and Drama" प्रकाशित होने जा रहा है।

मेरी ईश्वर से प्रार्थना है, कि सुश्री पी.मेदिनी होम्बल इस प्रकार के लेख एवं पुस्तकों को प्रकाशित कर संगीत जगत को अपने ज्ञान से समृद्ध करेगी।

सस्नेह–आशीर्वाद

(प्रो. पं चित्तरंजन ज्योतिषी)

निवास : बी. 24/14 ए-1 'स्वरांगन'
काश्मीरीगंज (राम मंदिर के पीछे)
वाराणसी –221010 (उ.प्र.) भारत

Ph. : 0542-2313120
Mob. : 8578027413

Address : B. 24/14 A-1 'Swarngan'
Kashmiri Ganj (Behind Ram Mandir)
Varanasi-221010 (U. P.) India

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आनन्दाभिव्यक्ति

चिरञ्जीवि पी.मेदिनी होम्बल के स्वलिखित शोध-परक कुछ निबन्धों का विधिवत् 'निबद्ध'-रूप में प्रथम सङ्कलन 'स्वलेख-सञ्चय' प्रकाशित होने जा रहा है – यह जान कर मुझे असीम आनन्द हुआ। सुविख्यात 'गुरु' कलाकार-युगल श्रीयुत शङ्कर-गिरिजा होम्बल जी की यह तीसरी पीढ़ी भी अपने (पिता-माता श्रीप्रेमचन्द-माला होम्बल के सदृश) महान् कुल का गौरव-विस्तार कर रही है – देख कर वस्तुतः मेरी दीदी स्वनामधन्या प्रो. प्रेमलता शर्मा जी के आनन्द का स्फुरण मेरे माध्यम से अभिव्यक्त हो रहा है।

चि. मेदिनी प्रायः शैशव-काल से ही प्रेमलता शर्मा जी के स्नेह से समृद्ध रहते हुए पली-बढ़ी है, "स्वर-ताल-पदात्मक" 'समग्र-सङ्गीत' की विरासत तो उसे अपनी मातृ-पितृ-कुलपरम्परा से मिली ही है, स्वयं उस में 'वाग्देवी' के प्रसाद से शुद्ध उच्चारण एवं शुद्ध चिन्तन की सहज क्षमता का समुचित विकास हुआ देख कर हमारे आनन्द का पार नहीं है। जहाँ आज तथाकथित 'शोधप्रबन्धों' में प्रायः निदेशक एवं छात्र दोनों में क्षमता की दरिद्रता देख कर चित्त व्यथित होता है, वहीं सौभाग्य से कहीं-कहीं 'चिन्तन तथा अभिव्यक्ति' की समृद्धि स्फुरित होती पा कर आशा का स्रोत सजीव हो उठता है कि 'वाग्देवी' के 'प्रसाद-बीज' कहीं न कहीं अवश्य 'अङ्कुरित' भी हो रहे हैं। ऐसे युवा चिन्तक लेखक निश्चय ही 'सरस्वती' की 'बगिया' सूखने नहीं देंगे।

चि. पी. मेदिनी होम्बल के अनेक 'स्वलेख-सञ्चय' नए-नए रूपों में सतत प्रकाशित होते रहें – ऐसी अशेष स्नेहमयी शुभकामनाएँ हृदय से अभिव्यक्त हो रही हैं। श्रद्धेया प्रेमलता शर्मा जी आज सदेह हमारे मध्य नहीं हैं, किन्तु उन्हीं का 'विदेह' हृदय उन की इस अनुजा के माध्यम से व्यक्त हो रहा है।

सस्नेह – सर्वशुभाकांक्षिणी,

ऊर्मिला शर्मा

डॉ.कु.ऊर्मिला शर्मा (प्रो. प्रेमलता शर्मा जी की अनुजा)(निवास –)आम्नाय,धर्मजितनगर,२०९-१, करौंदी,(डाक-का.हि.वि.वि)वाराणसी-२२१००५, दूरभाष - स्थिर- ०५४२-२५७५५६०, सचल-०९४१५२४०७८५, ,०९४५१९६३३८९, ०७६०७९८०२८६, email-shrijibns@gmail.com

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रस्तावना

मैं, आपके समक्ष अपनी प्रथम पुस्तक वैश्विक नृत्य नाट्य प्रस्तुत करते हुए प्रसन्नता का अनुभव कर रही हूँ। पहली पुस्तक होने पर भी इसके विभिन्न विषयों को संकलित करने हेतु गहन अध्ययन और शोध किया गया है। इस पुस्तक में मेरे द्वारा विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय शोध संगोष्ठियों और शोध पत्रिकाओं में प्रस्तुत किये गये विभिन्न शोधपत्रों का संकलन प्रस्तुत है, जिसके अन्तर्गत भारतीय नृत्य व नाट्य से लेकर दक्षिण पूर्वी एशियाई नृत्य नाट्य जैसे विभिन्न विषय संकलित हैं।

यह पुस्तक मुख्य रूप से स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों के लिये सरलता से समझ आने वाली भाषा में लिखी गई है।यह उन्हें अध्ययन और शोध हेतु प्रपत्र आदि तैयार करने में सहायता करेगी और साथ ही प्रतियोगितात्मक परीक्षाओं जैसे रेट एवं नेट आदि की तैयारी में भी सहयोग प्रदान करेगी।

मुख्य रूप से नृत्य विषय पर केन्द्रित यह पुस्तक मैंने हिन्दी एवं अंग्रेज़ी दोनों ही भाषाओं में लिखी है जिससे कि विषयों को समझने में विद्यार्थियों को और अधिक सुगमता प्राप्त हो। यह पुस्तक भरतनाट्यम् की परम्पराओं और इतिहास को साथ ही इसके आधारभूत तत्वों जैसे अड्वु एवं हस्त मुद्राओं को वर्णित करती है। तत्पश्चात् ताल, लोक नृत्य, चिकित्सा के रूप में नृत्य का महत्व और पारम्परिक तकनीक रियाज़ के महत्व का वर्णन प्रस्तुत करती है।

इसके पश्चात् मुख्य रूप से नृत्य और ललित कलाओं को केन्द्रित करते हुए भास और कालिदास के संस्कृत नाट्यों और पूर्वरंग को विस्तार से वर्णित किया गया है। अन्ततः दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में रामायण के प्रभाव को मुख्य रूप से कथाओं में प्राप्त परिवर्तन को आधार बनाकर वर्णित किया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

मैं हृदय से कामना करती हूँ कि मेरा यह प्रयास सफल हो सके और यह पुस्तक विद्यार्थियों को उनके अध्ययन में और कार्यकाल में सहायता करे।

पी, मेदिनी होम्बल
सहा. प्रा. भरतनाट्यम्
इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय,
खैरागढ़, छ.ग. – 491881

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अनुक्रमणिका

प्रस्तावना

1. भरतनाट्यम् : परंपरा और परिवर्तन 1
2. भरतनाट्यम् के आधारभूत अक्षर-अडवु 10
3. भरतनाट्यम् में हस्त मुद्राओं का महत्त्व 22
4. भारतीय संगीत (गायन, नर्तन एवं वादन) में ताल की उपादेयता : भरतनाट्यम् नृत्य के विशेष संदर्भ में 32
5. पूर्वरंग - संस्कृत नाटकों का एक लुप्त व पुनर्निमित अंग 42
6. भास के नाटकों में कलात्मक अभिव्यक्ति के अवसर 51
7. संस्कृत रूपकों में नृत्य प्रयोग की संभावनाएँ 60
8. जन चेतना का नया स्वरूप - लोक कलाओं का नया रूप 70
9. नृत्य : एक प्राचीन आरोग्यकर अनुष्ठान - एक आधुनिक चिकित्सकीय पद्धति 77
10. रियाज़ - अतीत के समर्पण और भक्ति से वर्तमान के मात्र अभ्यास तक की यात्रा 85
11. थाईलैण्ड का गौरवशाली महाकाव्य रामाकियेन : एक परिचय 90
12. दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में भारतीय महाकाव्य रामायण 96

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

HOMBALS

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरतनाट्यम् : परंपरा और परिवर्तन

भरतनाट्यम् दक्षिण भारतीय प्रदेश तमिलनाडु का शास्त्रीय नृत्य है। प्राचीन ग्रन्थों में वर्णित नृत्य परम्परा शान्तिकूत्तु में इसके बीज पाये जाते हैं। तमिलनाडु की नाट्य परम्पराओं भागवत् मेला और कुरुवंजी में इसके अंश पाये जाते हैं। इसका उद्भव मन्दिरों में पूजा विधि के एक अंग के रूप में हुआ। प्राचीन काल में शैव मत के मन्दिरों में शिवाराधना हेतु नृत्य संगीत का प्रयोग होता था, धीरे धीरे यह प्रथा हर देवी देवताओं के मन्दिरों में भी प्रयुक्त की जाने लगी।

इस प्रकार नृत्य, गायन और वादन आराधना का अभिन्न अंग बन कर पूजन की सोलह विधियों अर्थात् षोडषोपचार विधि में सम्मिलित हो गये। ये नृत्य व गायन प्रस्तुत करने के लिये कुछ स्त्रियों को नियुक्त किया जाता था जो देवदासियाँ कहलाती थीं। देवदासी का अर्थ है ईश्वर की सेविका। बाल्यावस्था में ही माता पिता अपनी स्वेच्छा से अपनी पुत्री का दान मन्दिरों में कर देते थे अन्यथा स्त्रियाँ स्वतः स्वयं को ईश्वर के प्रति समर्पित कर देती थीं अथवा राजा महाराजा युद्ध में जीती स्त्रियों को मन्दिरों में समर्पित कर देते थे।

इस प्रकार देवदासी परम्परा का जन्म हुआ।

इन्हें नृत्य संगीत में पारंगत किया जाता था और उचित समय पर इनका विवाह मन्दिर में स्थापित देवमूर्ति से कर दिया जाता था और ये पूर्णतया ईश्वर को समर्पित देवदासियाँ बन जाती थीं। ये ईश्वर की पत्नियाँ थीं अतः समाज में इनका अत्यधिक महत्त्व था और ये जनसाधारण और ईश्वर के मध्य सम्पर्क स्थापित करने हेतु एक साधन भी थीं।

इनके साथ ही इनकी कला भी उतनी ही महत्वपूर्ण मानी जाती थी क्योंकि इसी अद्भुत कला के माध्यम से ये ईश्वर को सदा प्रसन्न रखती थीं। अतएव देवदासियों द्वारा प्रस्तुत होने के कारण यह नृत्य दासीआट्टम् (दासियों का नृत्य) व सादिर (प्रस्तुति) के नाम से प्रसिद्ध था। नृत्य संगीत के अतिरिक्त ये दासियाँ पूजन विधियाँ, उपचार विधियाँ, गृह कार्य आदि की शिक्षा भी ग्रहण

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करती थीं। ये देवता के जागने के समय, भोजन के समय, सोने के समय, उनकी रथ यात्राओं के समय और आनन्द के लिये नृत्य प्रस्तुत करती थीं। इनके नृत्य व गीत सदा ईश्वर की स्तुति, उनकी प्रशंसा, इनकी विभिन्न लीलाएँ ही प्रस्तुत करते थे।

लगभग 500 ईसा पूर्व से 500 ईसा पश्चात् के मध्य लिखे गये तमिल ग्रन्थ सिलप्पदिकारम् में भी देवदासियों व उनके नृत्य का उल्लेख प्राप्त है। इस ग्रन्थ में शान्तिकूत्तु का वर्णन एक शास्त्रीय नृत्य शैली के रूप में प्राप्त है और वहीं ग्रन्थ की दूसरी नायिका माधवी का वर्णन भी एक नर्तकी के रूप में है।

सरलता से कहा जा सकता है कि उस समय में भी यह नृत्य समाज में उपस्थित था किन्तु उसका स्वरूप समान था अथवा भिन्न, यह कह पाना कठिन है।

9वीं – 10वीं शती. ई. प. के मध्य सादिर व दासीआट्टम् का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। इस समयकाल में कई राजाओं ने कई मंदिरों की स्थापना की जैसे बृहदीश्वर, तन्जौर और चिदम्बरम् के मंदिर। इन मन्दिरों में राजाओं ने कई देवदासियों को भी नियुक्त किया। राजराजा चोल ने तो बृहदीश्वर मन्दिर की स्थापना कर 400 देवदासियों को वहाँ नियुक्त किया । देवदासियों की इतनी विशाल संख्या में नियुक्ति उस राजा की विशाल सम्पदा दर्शाते हुए उनकी प्रतिष्ठा में वृद्धि करती थीं।

धीरे धीरे देवदासियाँ मन्दिरों के अतिरिक्त राजाओं की सभाओं और जन साधारण के मध्य होने वाले शुभ अवसरों में भी जा कर अपना नृत्य प्रस्तुत करने लगीं। वे राजदासी और स्वदासी के रूप में भी प्रचलित होने लगी। जैसे जैसे देवदासियों की प्रतिष्ठा बढ़ी उनकी कला का भी और अधिक सम्मान किया जाने लगा। कई राजकुमारियाँ व रानियाँ भी देवदासियाँ बन नृत्य कला सीखने लगीं।

मराठा राजाओं के वैवाहिक सम्बन्धों के कारण भी देवदासी प्रथा का प्रचार प्रसार हुआ। तन्जौर की कई राजकुमारियों के विवाह बड़ौदा के राजपरिवारों में हुए। उन राजकुमारियों के साथ कई देवदासियाँ भी बड़ौदा गईं और वहाँ जाकर सादिर को लोकप्रिय बनाया। इस प्रकार उत्तर भारत के कुछ भागों में यह नृत्य सैंकड़ों वर्षों पहले ही पहुँच चुका था। राजदरबारों और राजाओं के अन्तःपुर तक पहुँचते ही नृत्य का स्वरूप परिवर्तित हुआ।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अब ईश्वराराधना के साथ आनन्द को भी कुछ महत्व दिया जाने लगा और चूँकि राजाओं महाराजाओं को अपनी प्रशंसा सुनना अतिप्रिय था, तो अब देवों के साथ नृत्य प्रस्तुतियों में राजाओं का भी गुणगान किया जाने लगा। भक्तिपूर्ण नृत्य के साथ अब आनन्दपूर्ण नृत्य भी उतनी ही तन्मयता से किया जाने लगा। गीतों की भाषा अभी भी प्रमुख रूप से तेलुगु, तमिल और संस्कृत ही थी और नृत्य के लिये अलग से गीत भी लिखे जाते थे।

कई बार राजाओं ने भी गीत लिखे जिन पर देवदासियाँ और राजदासियाँ नृत्य प्रस्तुत करती थीं।

ये देवदासियाँ वैसे तो ईश्वर की पत्नियाँ थीं किन्तु अपनी वंश वृद्धि के लिये इन्हें किसी पुरुष से सम्बन्ध बनाने की स्वतन्त्रता भी थी। कई राजाओं ने भी देवदासियों को अपनी अर्धांगिनी के रूप में स्वीकार किया। एक ऐसे समाज में जहाँ स्त्रियों को अधिक अधिकार नहीं थे वहाँ देवदासियों की यह स्वतन्त्रता अभूतपूर्व ही थी। किन्तु उनकी यही स्वतन्त्रता उनके और उनकी कला के पतन का कारण भी बनी।

राजादि उनका शोषण करने लगे और कुछ देवदासियाँ भी अपनी कला से अधिक भौतिक सुखों की प्राप्ति को महत्व देने लगीं। मुग़ल काल से पूर्व प्रारम्भ हो चुके इस पतन ने मुग़ल काल में तीव्रता ली, किन्तु अंग्रेज़ों के समयकाल में यह पतन अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया।

अंग्रेज, भारत में अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे जिसके लिये उन्हें सबसे सरल मार्ग लगा भारतीयों को अपनी परम्पराओं, सभ्यताओं, धारणाओं और ईश्वराराधना से दूर करना। उन्होंने भारतीयों के मध्य पश्चिमी विचारधाराओं और ईसाई धर्माचरणों को लोकप्रिय बनाना प्रारम्भ कर दिया। इसके अतिरिक्त ईसाई समाज ईश्वर को समर्पित स्त्रियों का परपुरुष से संसर्ग सही नहीं मानते थे अतः इन कारणों से उन्होंने प्रबल रूप से देवदासी परम्पराओं का विरोध प्रारम्भ किया। धीरे धीरे भारत के कई सभ्य परिवार भी इस परम्परा का खण्डन करने लगे।

एक सम्पूर्ण प्रथा को समाप्त करने के लिये प्रारम्भ हुआ यह विरोध कुछ रूपों में सही था क्योंकि पुरुषों द्वारा देवदासियों का शोषण इस प्रथा के साथ समाप्त होता, किन्तु अंग्रेज़ों का यह विरोध केवल देवदासी परम्परा तक सीमित नहीं था, वे उनकी कला का भी विरोध करने लगे। वे नृत्य को नाच के

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाम से और देवदासियों को नाचने वाली कह कर पुकारने लगे और निम्न दृष्टि से देखने लगे।

इसका गहरा असर भारतीय समाज पर पड़ा और वे अब न तो अपनी पुत्रियों को देवदासी के रूप में ईश्वर को समर्पित करते और न ही इस नृत्य को सीखने देते। राजाओं का वैभव, उनका प्रभाव अग्रेज़ों के अधीन होने के कारण समाप्त हो गया था, इस कारणवश वे देवदासियों को संरक्षण नहीं दे सकते थे। परिणाम स्वरूप मन्दिरों से देवदासियों को निकाला जाने लगा, उन्हें दी गई सुविधाओं को छीन लिया गया, समाज में उनकी प्रतिष्ठा क्षीण हो गई।

जीवन यापन के लिये उन्हें छोटे ज़मींदारों और धनिकों के घरों पर उनकी सभाओं में, यहाँ तक कि सड़कों पर भी अपना नृत्य प्रस्तुत करना पड़ा। ऐसे स्थानों पर कोई भी भक्तिपूर्ण और ईश्वर की स्तुति प्रस्तुत करते गीतों पर नृत्य प्रस्तुतियाँ नहीं देखना चाहता था अतः नृत्य का स्वरूप परिवर्तित हो गया।

अब दासीआट्टम् नृत्य द्वारा निम्न स्तरीय मनोरंजन और आकर्षण प्रस्तुत किया जाने लगा। ऐसी अपनी ओर आकर्षित करने वाली प्रस्तुतियों के कारण समाज में देवदासियों का स्थान और अधिक धूमिल हो गया और वे एक साधारण वेश्या के समान मानी जाने लगीं। इससे नृत्य की गरिमा और भी नीचे आ गई। सभ्य परिवार अपनी पुत्रियों को नृत्य सिखाना तो दूर उन्हें यह नृत्य देखने भी नहीं देते थे। धीरे धीरे यह नृत्य विलुप्त होने की कगार पर पहुँच गया। किन्तु ऐसे विकट समय में भी कुछ देवदासियों ने अपनी मर्यादा नहीं त्यागी और नृत्य की प्रतिष्ठा को बनाये रखने का सम्पूर्ण प्रयास किया।

वे अवश्य सभाओं में नृत्य प्रस्तुत करतीं परन्तु उसकी गरिमा को यथासम्भव बनाये रखते हुए। उन्होंने अपने ही परिवारों और ऐसे कुछ गिने चुने परिवारों की कन्याओं को नृत्य सिखाया जो इस नृत्य की प्रतिष्ठा को आज भी स्वीकारते थे। नट्टुवनार जो मन्दिरों में देवदासियों के साथ संगत का कार्य करते थे तथा देवदासियों को बाल्यावस्था से नृत्य में शिक्षित करते थे उन्होंने भी ऐसे ही जन साधारण में नृत्य शिक्षा देकर इस नृत्य को जीवित बनाये रखा।

19वीं शताब्दी में जब देवदासियों की अत्यधिक दुर्दशा हो गई तब ऐसे समय में नृत्य के क्षेत्र में चार भाइयों का आगमन हुआ। बचपन से नृत्य संगीत में शिक्षा प्राप्त किये ये चारों भाई तन्जौर के राजा सरफोजी द्वितीय के दरबार में कार्यरत थे। ये थे – चिन्नैया, पोन्नैया, शिवानन्दम् और वडिवेलु जो आज, तन्जौर भाइयों के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये चारों भाई देवदासियों और नृत्य कला

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की दयनीय स्थिति से अत्यन्त विचलित थे और इन्होंने प्रयास प्रारम्भ किया कि यह नृत्य सड़कों से उठ पुनः अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त कर सके।

उन्होंने इसकी शिक्षा को न केवल नियमित किया अपितु मंच पर भी यह नृत्य प्रस्तुत हो सके इस प्रकार कुछ पदों पर नृत्य प्रस्तुति का निर्धारण किया जो भक्तिपूर्ण भी थे और आनन्ददायक भी। यह निश्चित स्वरूप मार्गम् कहलाता था। अब दासीआट्टम् को पुनः मन्दिरों में, राजदरबार और सभाओं में प्रस्तुत किया जाने लगा तथा यह अपनी लुप्त हो चुकी प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त कर सका।

तन्जौर भाइयों ने नृत्य प्रस्तुतियों के लिये ही प्रमुख रूप से तेलुगु, तमिल व संस्कृत भाषाओं में कई विशिष्ट गीत रचे जो उच्च श्रेणी की अद्भुत रचनाएँ थीं। अब चूँकि नृत्य प्रशिक्षण पर केवल मन्दिरों का अधिपत्य नहीं रह गया था अतः तन्जौर भाइयों के वशंजों और शिष्यों ने भी उनकी परम्परा को भिन्न स्वरूप में आगे बढ़ाया। पन्दनल्लूर मीनाक्षीसुन्दरम् पिल्लै, मुत्तु कुमार पिल्लै, वळवूर रामैय्या पिल्लै, श्री किट्टप्पा पिल्लै आदि कई ऐसे नट्टुवनार गुरुजन हुए जिन्होंने शिष्यों को अपने घर में रख कर अथवा शिष्यों के घरों में रहते हुए नृत्य प्रशिक्षण दिया। देवदासियाँ जैसे मइलापुर गौरी अम्मा ने भी मन्दिर में नृत्य करने के अतिरिक्त शिष्यों को नृत्य शिक्षा प्रदान की। इस प्रकार से उन्होंने नृत्य परम्परा को आगे भी बढ़ाया और संरक्षित भी रखा।

इन महान गुरुजनों ने कुछ ऐसे लोगों को भी शिक्षा दी जिन्होंने आगे चल कर इस नृत्य के क्षेत्र में बहुत ही विशाल परिवर्तन ला दिया।

20वीं शती में कुछ महान प्रतिभाओं का पदार्पण इस क्षेत्र में हुआ जिनमें से सबसे प्रमुख थे श्री ई. कृष्ण अय्यर, श्रीमती रुक्मिणी देवी अरुण्डेल एवं बालसरस्वती। सर्वप्रथम उन्होंने, प्रमुख रूप से श्री ई. कृष्ण अय्यर एवं श्रीमती रुक्मिणी देवी अरुण्डेल ने, देवदासियों की बिगड़ी हुई धूमिल छवि से नृत्य को दूर करने के लिये दासीआट्टम् को एक नया नाम दिया – भरतनाट्यम्।

इन महान व्यक्तित्त्वों ने भरतनाट्यम् को भाव, राग और ताल के सम्मिश्रण के रूप में प्रस्तुत किया जिससे कि जनसाधारण को यह अपनी ओर आकर्षित भी करे और विसंगतियों की ओर से सभी का ध्यान भी हट जाये। ये सभी विशिष्ट लोग समाज में भी महत्वपूर्ण स्थान रखते थे अतः इनके द्वारा इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नृत्य को आगे बढ़ाने से जन सामान्य में इस नृत्य के प्रति व्याप्त विसंगतियाँ दूर होने लगी और वे इस नृत्य को एक नवीन दृष्टि से देखने लगे।

देवदासी परम्परा में जन्मी बालसरस्वती को अन्तिम देवदासी माना जाता है क्योंकि तत्पश्चात् देवदासी प्रथा समाप्त कर दी गई थी। प्रथा समाप्ति के बाद भी बालसरस्वती नृत्य के क्षेत्र में अग्रणी रहीं। उनका अभिनय प्रस्तुतिकरण इतना प्रभावशाली था कि कोई भी उसमें अभद्रता और बुराई नहीं खोज पाता था। उन्हें अभिनय रानी की जो उपाधि मिली वह आज तक कोई और प्राप्त नहीं कर पाया है। उनके अद्‌भुत अभिनय प्रस्तुति से जनसाधारण की यह मान्यता कि नृत्य केवल आकर्षण का माध्यम है, समाप्त होने लगी और वे इसे पुनः ईश्वर से जुड़ने का माध्यम समझने लगे।

श्री ई. कृष्ण अय्यर एक वकील थे किन्तु नृत्य से वे इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने नृत्य सीखा और उसे प्रस्तुत भी किया। वे विवाहादि उत्सवों में भी अपने नृत्य कार्यक्रम प्रस्तुत करते। एक जाने माने वकील का इस प्रकार विवाहादि उत्सवों पर नृत्य करना कौतुक का विषय बन गया और अपने आप अपनी ओर आकर्षित भी कर गया।

किन्तु इस क्षेत्र में सबसे बड़ी क्रान्ति लायीं गुरु श्रीमती रुक्मिणी देवी अरुण्डेल जिन्होंने एक सुसंस्कृत उच्च कोटि के ब्राह्मण परिवार से होते हुए भी कई सामाजिक विरोधों के विपरीत जा कर इस नृत्य को सीखा, उसे मंच पर प्रस्तुत किया और सबसे महत्वपूर्ण इसे परिष्कृत किया। उन्होंने कलाक्षेत्र नामक एक नृत्य संस्था मद्रास (चेन्नई) में स्थापित की जो आज भरतनाट्यम् का एक पर्याय बन चुकी है।

नृत्य के समाज से दूर होने के कारण कई ऐसे महान गुरुजन जो विषम परिस्थितियों में अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे तथा वे भी जो इस नृत्य को पुनः स्थापित करने के लिये प्रयासरत थे ऐसे कलाकारों को उन्होंने कलाक्षेत्र में आमन्त्रित कर वहाँ के विद्यार्थियों को नृत्य व संगीत शिक्षा प्रदान करने को कहा जिससे सभी के प्रयासों को गति और विराट स्वरूप भी मिल सका। इस प्रकार इस संस्था ने कई ख्यातिलब्ध कलाकारों की एक नवीन पीढ़ी को उत्पन्न किया।

सड़कों पर प्रस्तुति के कारण इस नृत्य में जो वासनापूर्ण शारीरिक क्रियाएँ सम्मिलित हो गई थीं उन्हें दूर करते हुए पुनः ईश्वरीय भक्ति से जोड़ने का कार्य श्रीमती रुक्मिणी देवी का ही था। उदा. स्वरूप – नायक ने नायिका

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को आँखों से संकेंत दिया यह दर्शाने के लिये नृत्यांगना आँख मारने की क्रिया तक प्रदर्शित करती थीं, उसे परिवर्तित करते हुए रुक्मिणी देवी ने केवल आँखें छोटी फिर बड़ी कर इसे दर्शाया जिससे नृत्यांगना द्वारा दर्शकों को अपनी ओर आकर्षित करने की क्रिया समाप्त हो गयी किन्तु अर्थ सभी दर्शकों को सम्प्रेषित हो सका। इस प्रकार से और भी कई परिवर्तन उन्होंने इस नृत्य में किये जैसे उन्होंने नृत्यांगना अथवा नर्तक को विरहिणी नायिका और ईश्वर जिनका वर्णन वो प्रस्तुत करे उन्हें नायक के रूप में वर्णित किया।

इससे अति श्रृंगारिक गीतों पर की जाने वाली नृत्य प्रस्तुति भी आध्यात्म और भक्ति से जुड़ गई। दर्शकों को नृत्य में सौन्दर्यबोध कराने हेतु उन्होंने शारीरिक भंगिमाओं को सुदृढ व सुनिश्चित किया, हस्त मुद्राओं को कोमल और कलात्मक बनाया तथा सम्पूर्ण नृत्य क्रिया को समान रूप से सौम्य और कठोर रूप के सम्मिश्रण के साथ प्रस्तुत करना प्रारम्भ किया।

इसके अतिरिक्त उन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा को महत्त्व देते हुए अडवुओं अर्थात् प्रारम्भिक क्रम को एक निर्धारित स्वरूप प्रदान किया और करने की विधि भी निर्धारित की। नवीन विषयों के प्रस्तुतिकरण पर भी उन्होंने ध्यान देते हुए संस्कृत के काव्य व महाकाव्य जैसे गीत गोविन्द, रामायण, महाभारत पर नृत्य रचनाएँ कीं। भरतनाट्यम् एकल नृत्य था किन्तु उन्होंने इसका प्रयोग नृत्य नाटिकाओं के सृजन में भी किया इस परिर्वन से इस नृत्य में प्रयोग के और द्वार भी खुल गये।

उनकी नृत्य सृजन की क्षमता ऐसी थी कि वे कुछ ही समय में अभूतपूर्व रचनाएँ कर देतीं।

नृत्य के साथ उन्होंने उसके संगीत तथा आहार्य को भी पुष्ट किया। नृत्य के लिये विशिष्ट गीतों की रचना तो पहले से ही होती थी किन्तु अब रुक्मिणी देवी ने वाद्य वृन्द को भी पुष्ट किया। रचना, भावादि के अनुरूप वाद्यों का प्रयोग तथा कहीं कहीं केवल वाद्यों की ध्वनि पर नृत्य प्रस्तुति प्रारम्भ कर उन्होंने नृत्य को और अधिक जीवन्त बनाया।

आहार्य में भी उन्होंने कई परिवर्तन किये जैसे पहले नर्तकियाँ धोती जैसे साड़ी पहनती थीं अथवा उसे ऊँचा कर पहनती थीं जिससे नृत्य करने में सरलता हो, चेहरे को रंगने (मेकअप) और आभूषणों पर भी कोई विशिष्ट ध्यान नहीं दिया जाता था और यदि पहले दिया भी जाता था तो वो देवदासी परम्परा के लुप्त होने के साथ ही लुप्त हो गया था। अब रुक्मिणी देवी ने साड़ी को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भिन्न प्रकार से काट और सिल कर पहना और एक ही जैसी वेशभूषा धारण करने की परम्परा को तोड़ते हुए कई प्रकार के नये वस्त्रों का सृजन किया जिससे नृत्य करने में भी सरलता हुई।

नाट्यशास्त्र के नियमों का ध्यान रखते हुए उन्होंने पात्र की मनःस्थिति, सामाजिक व अन्य स्थितियों को ध्यान में रखते हुए ही वस्त्रों की परिकल्पना की। मन्दिरों के शिल्प और चित्रों को देख समझ कर उन्होंने एक नवीन ही प्रकार के आभूषणों का सृजन किया जो जितने प्राचीन थे उतने ही नवीन भी थे। वस्त्राभूषण और वाद्यों के इन नवीन प्रयोगों से भरतनाट्यम् नृत्य प्रदर्शन और अधिक आकर्षक लगने लगा और अधिक से अधिक लोगों को अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम हुआ।

श्रीमती रुक्मिणी देवी के सभी प्रयास एक कला को जीवन्त बनाने हेतु थे किसी व्यक्तिगत स्वार्थ अथवा किसी एक नर्तक या नर्तकी को प्रसिद्ध करने हेतु नहीं अतः उनके प्रयास सफल भी हुए। जब जनसाधारण ने देखा कि एक उच्च ब्राह्मण परिवार की स्त्री इस क्षेत्र में इतना अभूतपूर्व योगदान दे रही है जो किसी भी रूप में घृणित नहीं वरन् पूजनीय है तो वे भी अपनी पुत्रियों और पुत्रों को भी नृत्य प्रशिक्षण देते के लिये सहर्ष मान गये और फलस्वरूप यह नृत्य पुनः अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा और वैभव प्राप्त कर सका।

भारत के स्वतन्त्र होने के साथ भारतीयों को पुनः अपनी संस्कृति से जोड़ने की चेष्टा प्रारम्भ हो गई और इसी के अन्तर्गत भारत के कई नृत्यों को शास्त्रीय नृत्य का महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया जिसमें भरतनाट्यम् भी एक था। विद्यालय, महाविद्यालय व विश्वविद्यालय जैसे शिक्षण संस्थानों में भी इन्की शिक्षा प्रदान करनी प्रारम्भ की गई। अब गुरुजनों को शिष्यों के घर रह कर शिक्षा नहीं देनी होती थी वे अब इन संस्थानों में एकसाथ कई छात्रों को नृत्य विधा में पारंगत कराते। तमिलनाडु से बाहर निकल चुका भरतनाट्यम् धीरे धीरे उत्तर भारत और विदेशों में भी प्रतिष्ठित हो गया।

चूँकि अन्य क्षेत्रों के निवासी तेलुगु व तमिल भाषाओं से अनभिज्ञ थे अतः वहाँ के निवासियों को इस नृत्य से जोड़ने के लिये उन क्षेत्रों की भाषाओं का प्रयोग भी नृत्य प्रदर्शन में होने लगा।

स्व. गुरु श्री शंकर होम्बल ने भोपाल, मध्य भारत में कलापद्म भरतनाट्यम् नृत्य अकादमी नामक संस्था स्थापित कर हिन्दी भाषा में सूरदास, मीरा आदि के पदों को आधार बना कर नृत्य व नृत्य नाटिकाओं जैसे माखन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

चोरी, कालिया दमन आदि की रचना की व उन्हें प्रस्तुत किया और इस क्षेत्र में भरतनाट्यम् नृत्य को स्थापित किया। मध्य भारत मुख्य रूप से भोपाल में भरतनाट्यम् को स्थापित करने वाले वे पहले कलाकार थे।

श्रीमती अंजलि मेढ़ को गुजरात के गायकवाड़ महाराज ने कलाक्षेत्र भेज भरतनाट्यम् की शिक्षा दिलवाई और उनके लौटने पर उन्हें बड़ोदा विश्वविद्यालय में नृत्य सिखाने का कार्य सौंपा। स्व. गुरु श्रीमती मृणालिनी साराभाई ने अहमदाबाद, गुजरात में दर्पण नृत्य संस्था प्रारम्भ कर वहाँ भरतनाट्यम् को और अधिक दृढ़ता से स्थापित किया। वर्णम् जैसे कठिन पद भी उन्होंने गुजराती भाषा में रचे जिससे जनसाधारण को समझ भी आये और वे इस ओर आकर्षित भी हों।

इन सभी महान गुरुजनों का प्रयास केवल इतना ही था कि भरतनाट्यम् पुनः लुप्त होने की स्थिति में न पहुँचे अतः उसे इतना सरल बना दो कि सभी जान सकें, समझ सकें और आकर्षित हो कर सीख सकें जिससे कि नृत्य की यह प्रथा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अपनी प्राचीन परम्परा और नवीन परिवर्तनों के साथ पहुँच सके। आज यह परिवर्तन का कार्य प्रगति से हो रहा है। लगभग सभी नवीन नृत्यकार कुछ न कुछ नवीन प्रयोग अवश्य कर रहे हैं किन्तु इसमें यह ध्यान रखना अति आवश्यक है कि परिवर्तन की बाढ़ में परम्परा कहीं लुप्त न हो जाये।

सन्दर्भ :

- Understanding Bharata Natyam;Mrinalini Sarabhai; Baroda University Lectures, M.S. University, Baroda Publications 1975 (second edition).
- Sangeet Natak, Journal of the Sangeet Natak Akademi: 72-73 (Special Issue Balasaraswati) April–Sep. 1984.
- Bharatanatyam: Yesterday, today tomorrow; Mrinalini Sarabhai; A Journal, Indian and World Arts Publications, 1985.
- The Science of Bharata Natyam, Saroja Vaidyanathan, published by Saroja Vaidyanathan, 1984.
- Kalakshetra - Rukmini Devi Reminiscences; S. Sharada, Kala Mandir Trust, Madras, 1985 (first edition).

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरतनाट्यम् के आधारभूत अक्षर-अडवु

मन्दिरों में ईश आराधना के साधन के रूप में उत्पन्न भरतनाट्यम् नृत्य लगभग दो हज़ार वर्ष प्राचीन माना जाता है। दो हज़ार वर्षों के इस अन्तराल में समय की अविरल गति को इस नृत्य कला ने भी सहन किया, कभी उत्थान तो कभी पतन का समय काल देखा। प्रारम्भ में यह नृत्य केवल दक्षिण भारत के शिव मन्दिरों की पूजन विधि में सम्मिलित था किन्तु धीरे धीरे सम्पूर्ण भारत में जब नृत्य पूजन विधि का अंग बनने लगा तब यह नृत्य भी प्रमुख रूप से दक्षिण भारत के सभी देवी देवताओं के मन्दिरों में पूजन विधि के रूप में सम्मिलित हो गया।

इस प्रकार सम्पूर्ण भारतवर्ष में नृत्य गायन षोडषोपचार अर्थात् देव पूजन की सोलह विधियों का एक अंग बन गये। इस नृत्य को उस समय प्रायः स्त्रियाँ ही प्रस्तुत करतीं थीं, जिन्हें देवदासी कहा जाता था। देवदासी का अर्थ है ईश्वर की दासी। इन दासियों द्वारा प्रस्तुत होने के कारण यह नृत्य सादिर (प्रस्तुति) व दासीआट्टम् (दासियों का नृत्य) नामों से प्रसिद्ध था। समय व्यतीत होने के साथ मन्दिरों का यह नृत्य राजदरबारों में राजदासियों द्वारा प्रस्तुत होने लगा।

मुग़ल काल में इस नृत्य में, देवदासी व राजदासी की प्रथा से जुड़ा होने के कारण ही कुछ अच्छे बुरे परिवर्तन अवश्य आये, किन्तु इसकी धार्मिक गरिमा बनी रही। लेकिन मुग़ल काल की समाप्ति के पश्चात् आये अंग्रेज़ी काल में यह नृत्य पहले दयनीय स्थिति और तब पुनर्निर्माण की स्थिति से अवगत हुआ। देवदासी प्रथा का मूल स्वरूप इस काल के आने तक पूर्णतया समाप्त हो चुका था जिसका कारण राजाओं, राजकुमारों, सामन्तों और पण्डितों आदि के द्वारा इन दासियों का शोषण होने लगा था।

प्रारम्भ में समाज में जिन देवदासियों को आदर की दृष्टि से देखा ज़ाता था उन्हें अब समाज में निम्न और हीन दृष्टिकोण का सामना करना

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पड़ा। जो एक समय में ईश्वर की पत्नी के रूप में पूजी जाती थीं उन्हें अब एक वैश्या का स्थान समाज में दिया जाने लगा। देवदासियों की इस दशा का प्रभाव उनकी कला पर भी पड़ा और ईश आराधना हेतु की जाने वाली यह कला सड़कों तक पहुँच गई। माता पिताओं ने अपनी पुत्रियों को नृत्य शिक्षा दिलाना समाप्त कर दिया।

केवल कुछ ही ऐसे परिवार शेष रहे जो अब भी नृत्य को भारतीय संस्कृति का गौरव मानते हुए अपनी पुत्रियों को इसकी शिक्षा प्रदान करते। लेकिन इन सब परिवर्तनों के बीच सादिर अथवा दासीआट्टम् का मूल स्वरूप कहीं लुप्त सा हो गया और जो शेष था वह भी अशुद्ध हो चुका था। ऐसे में 19वीं शती के प्रारम्भ में तन्जौर के राजा सरफोजी द्वितीय के दरबार में कार्यरत चार भाइयों का इस नृत्य के क्षेत्र में पदार्पण हुआ। ये चार भाई चिन्नैया, पोन्नैया, वडिवेलु व शिवानन्दम्, तन्जौर चतुष्टय भाई के नाम से आज भी प्रसिद्ध हैं। इन चारों भाइयों ने न केवल देवदासियों की स्थिति सुधारने का प्रयत्न किया वरन् उनकी नृत्य कला को पुनः समाज में प्रतिष्ठित करने की दिशा में प्रथम और अति महत्वपूर्ण कार्य किया।

अपने अथक प्रयासों से उन्होंने सादिर या दासीआट्टम् के लिये एक नवीन और मंच पर प्रस्तुत होने योग्य मार्गम् अर्थात् वस्तुक्रम का निर्माण किया जिसमें न केवल प्राचीन काल से मन्दिरों में परम्परा से चले आ रहे नृत्य रूपों का प्रयोग था वरन् साथ में नवीन प्रचलित परम्पराओं का सम्मिश्रण भी किया गया था।[1] सौन्दर्यशास्त्र के सिद्धान्तों, नृत्य के आध्यात्मिक स्वरूप तथा राजदरबारों में लोकप्रिय लालित्यपूर्ण नृत्य का सम्मिश्रण कर तन्जौर भाइयों ने दासीआट्टम् को एक सुन्दर व गरिमामयी नृत्य रूप प्रदान किया।[2]

देवदासियों का उद्धार भले ही तन्जौर भाइयों से सम्भव न हो पाया हो किन्तु दासीआट्टम् नृत्य को उन्होंने एक नवीन स्वरूप अवश्य प्रदान कर दिया। यह कार्य करते समय उनके लिये यह आवश्यक हो गया था कि उसके प्रारम्भिक व आधारभूत क्रम को भी एक निर्धारित व क्रमबद्ध स्वरूप प्रदान किया जाये। अतः तन्जौर भाइयों ने नाट्यशास्त्र में वर्णित करणों व अंगहारों को आधार बनाते हुए पुनः सादिर (दासीआट्टम्) को एक निश्चित आधारभूत क्रम भी प्रदान किया।

यह क्रम अडवु कहलाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

तन्जौर भाइयों ने अडवुओं की कुल 12 श्रेणियाँ बनाईं जिनमें प्रत्येक के 10 विभाग थे। इस प्रकार उन्होंने कुल 120 अडवुओं के स्वरूप की पुनर्रचना की। इस तथ्य को प्रसिद्ध नर्तकी मृणालिनी साराभाई भी अपने एक लेख में सिद्ध करते हुए कहती हैं किं उन्होंने यह वक्तव्य अपने गुरुजी श्री पन्दनल्लूर मीनाक्षीसुन्दरम् पिल्लै से शिक्षा ग्रहण करते समय सुनी थी।[3]

यही कथन मैंने भी कलाक्षेत्र में शिक्षा ग्रहण करते समय अपने गुरुजनों से और बाल्यावस्था में अपने दादाजी गुरु श्री शंकर होम्बल से जाना था जिन्होंने कलाक्षेत्र में स्वयं अपनी गुरु श्रीमति रुक्मिणी देवी अरुण्डेल से इस कथन को जाना था।

20वीं शती ई. पूर्व में गुरु श्री. ई. कृष्ण अय्यर व गुरु श्रीमती रुक्मिणी देवी अरुण्डेल ने सादिर अथवा दासीआट्टम् को देवदासियों की धूमिल हो रही छवि से दूर करते हुए उसे एक नवीन स्वरूप एवं नाम प्रदान किया। उन्होंने भाव राग ताल का नृत्य से सम्मिश्रण करते हुए सादिर अथवा दासीआट्टम् को एक नवीन मर्यादित नाम प्रदान किया भरतनाट्यम्।

इस परिवर्तन काल में एक बार पुनः इन अडवुओं के स्वरूप में परिवर्तन हुआ। इस बार यह परिर्वन श्रीमती रुक्मिणी देवी अरुण्डेल ने किया। समय के साथ अडवुओं में कुछ बिखराव आ गया था जिसे समेटते हुए श्रीमती रुक्मिणी देवी अरुण्डेल ने 120 अडवुओं से लगभग 50 से 55 अडवुओं की रूपरेखा तैयार की। अडवुओं की सटीक संख्या व प्रस्तुति के स्वरूप को लेकर भरतनाट्यम् की विभिन्न बानियों (घरानों) में आज भी मतभेद है किन्तु इस बात में कोई दो राय नहीं कि अडवु ही भरतनाट्यम् का आधार हैं।

जैसा कि पूर्व में कहा गया है, भरतनाट्यम् के इन आधारक्रम अडवुओं के स्वरूप का निर्माण करण व अंगहार को आधारित बना कर किया गया है अतः माना जाता है कि भरतनाट्यम् में अडवु करणों का स्वरूप हैं और इन अडवुओं से निर्मित कोरवै, जति व तीर्मानम्, अंगहार का स्वरूप हैं।

प्रायः कई कलाकारों की मान्यता है कि करण शरीर की एक स्थिर स्थिति है किन्तु भरतमुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र के वर्णनानुसार करण, हस्त–पाद आदि शरीरांगों द्वारा की गई कई सूक्ष्म क्रियाओं से मिल कर बने हैं।

हस्तपादसमायोगो नृत्तस्य करणं भवेत्।
द्वे नृत्तकरणे चैव भवतो नृत्तमातृका।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वाभ्यां त्रिचतुराभिर्वाप्यङ्गहारस्तु मातृभिः।
त्रिभिः कलापकं चैव चतुर्भिः षण्डकं भवेत्।।
पंचैव करणानि स्युः संघातक इति स्मृतः।
षड्भिर्वा सप्तभिर्वापि अष्टभिर्नवभिस्तथा।।
करणैरिह संयुक्ता अङ्गहाराः प्रकीर्तिताः।।[4]

– नाट्य शास्त्र : 4/30–33

अर्थात् :– नृत्य में हाथों और पैरों के समन्वय से प्रस्तुत क्रियाएँ करण कहलाती हैं। दो करणों के योग से एक मातृका बनती है और दो, तीन अथवा चार मातृकाओं के संयोग से एक अंगहार का निर्माण होता है। तीन करणों से एक कलापक, चार से षण्डक और पाँच करणों से संघातक का निर्माण होता है। इस प्रकार से प्रत्येक अंगहार में छः, सात, आठ अथवा नौ करणों का समावेश होता है।[5]

भरतनाट्यम् के अडवुओं का निर्माण करते समय सम्भवतः करण अंगहार के इन्हीं नियमों का पालन किया गया था। एक करण के निर्माण में जिस प्रकार हाथों और पैरों की विभिन्न क्रियाओं का प्रयोग होता है उसी प्रकार अडवुओं में भी हाथों, पैरों, सिर, कटि आदि शरीरांगों की विभिन्न क्रियाओं का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक अडवु में भिन्न प्रकारों से शारीरिक क्रियाओं का प्रयोग होता है।

इसी प्रकार कई करणों के मेल से जिस प्रकार अंगहार बनते हैं ठीक उसी प्रकार कई अडवुओं के मिश्रण से भरतनाट्यम् नृत्य के महत्वपूर्ण अंग कोरवै, जति और तीर्मानम् बनते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि अडवुओं के निर्माण हेतु प्रयुक्त मूलभूत आधार के रूप में नाट्यशास्त्र में वर्णित करण व अंगहारों को ही लिया गया है।

जिस प्रकार करणों व अडवुओं में हम समानता देखते हैं उसी प्रकार से अंगहार व कोरवै के शाब्दिक अर्थ व प्रस्तुति स्वरूप में भी समानता प्राप्त होती है। अंगहार शब्द का अर्थ है शरीरांगों की क्रियाओं द्वारा निर्मित माला और यही अर्थ कोरवै का भी होता है जो कि एक तमिल भाषा का शब्द है।

अडवुओं के समूह को जब स्वरों के साथ प्रस्तुत करते हैं तब वे कोरवै कहलाते हैं और जब अडवु के ऐसे ही समूह को तकनीकी बोलों के साथ प्रस्तुत करते हैं तब वे जति व तीर्मानम् कहलाते हैं। भावाभिनय, हस्त मुद्राओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

के अतिरिक्त भरतनाट्यम् नृत्य का आधार यही कोरवै, जति व तीर्मानम् हैं जिनका निर्माण अडवुओं से होता है।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि भरतनाट्यम् नृत्य इन अडवुओं के बिना प्रस्तुत करना सम्भव ही नहीं है।

तन्जौर भाइयों द्वारा स्पष्ट रूप से गठित इन अडवुओं को और अधिक स्पष्ट रूप देते हुए श्रीमति रुक्मिणी देवी अरुण्डेल ने यह निर्धारित किया कि भरतनाट्यम् नृत्य शिक्षा का प्रारम्भ इन्हीं अडवुओं से हो क्योंकि इसके पूर्व शिक्षा का प्रारम्भ भरतनाट्यम् के प्रथम चरण अलारिपु से किया जाता था और जब जिस अडवु की आवश्यकता पड़ती थी तब उन्हें सिखा दिया जाता था।

कलाक्षेत्र बानी ही वह प्रथम घराना बना जिसमें सर्वप्रथम तीन लयों में सभी अडवुओं की विधिवत् शिक्षा प्रदान की जाती थी और तत्पश्चात् ही अलारिपु व अन्य चरणों की शिक्षा प्रारम्भ होती थी।

धीरे धीरे कलाक्षेत्र घराने की इस पद्धति को अन्य सभी प्राचीन व नवीन भरतनाट्यम् बानियों अथवा घरानों ने भी अपना लिया और इस प्रकार अडवु शिक्षा को भी एक सुनिश्चित व निर्धारित क्रम प्राप्त हुआ। अडवुओं की संख्या घरानों की परम्परा के अनुसार भले ही परिवर्तित होती रहती है किन्तु सभी बानियों में लगभग सभी अडवु अरमण्डी अर्थात् अर्धबैठक की स्थिति में किये जाते हैं एवं केवल कुछ अडवु मुरुमण्डी (पूर्णबैठक) तथा समपाद (सीधे खड़े रहना) की स्थितियों में प्रस्तुत होते हैं।

प्रसिद्ध नृत्यांगना श्रीमती जयलक्ष्मी ईश्वरन् ने कलाक्षेत्र घराने के अडवुओं पर एक पुस्तक लिखी है।[6] उस पुस्तक को आधार मानते हुए किन्तु नवीन परिवर्तनों सहित कलाक्षेत्र घराने में सिखाये जाने वाले अडवुओं का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है –

1. तट्टडवु :– ये आठ प्रकार के अडवु केवल पैरों की क्रियाओं से किये जाते हैं। तट्ट का अर्थ है आघात करना और इन आठों अडवुओं में शरीर का सन्तुलन बनाये रखते हुए हाथ कमर पर ही रख कर एक के बाद एक पैरों को अडवु संरचना के अनुसार शक्ति से भूमि पर मारते हैं। लगभग इन सभी आठ अडवुओं के बोल तैया तई शब्दों से ही प्रारम्भ होते हैं। इन अडवुओं में आदि ताल (8 मात्रा) के अतिरिक्त क्रमशः तीसरे और आठवें

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अडवु में रूपकम् ताल (6 मात्रा) का प्रयोग किया जाता है। कुछ कलाकार तीसरे तट्टडवु को भी आदि ताल में ही प्रस्तुत करते हैं।

2. **नाट्टडवु :–** इनके भी आठ प्रकार हैं। सभी के बोल तैयुम तत् तत् तैयुम ताहा हैं और सभी आदि ताल (8 मात्रा) में ही किये जाते हैं। नाट्ट का अर्थ है फैलाना या बढ़ाना और इसी नाम को सार्थक करते हुए इन आठ अडवुओं में पैरों को आगे, पीछे, दोनों ओर फैलाया या बढ़ाया जाता है साथ ही हाथों का प्रयोग भी फैलाव लिये हुए यहीं से ही प्रारम्भ होता है। हाथों की प्रथम प्रारम्भिक स्थिति नाट्यारम्भ के प्रयोग से ही, पहले चार नाट्टडवुओं का प्रारम्भ होता है। इन अडवुओं में त्रिपताक, कटकामुख, अलपद्म व पताक हस्त मुद्राओं का प्रयोग होता है।

3. **परवल अडवु अथवा ता तई तई तत् अडवु या पक्क अडवु :–** नृत्यांगना श्रीमती जयलक्ष्मी ईश्वरन् के अनुसार कलाक्षेत्र में इस अडवु समूह को पक्क अडवु या ता तई तई तत् अडवु कहते हैं किन्तु आज अन्य घरानों के आधार पर इन को परवल अडवु के नाम से अधिक जाना जाता है। परवल शब्द का अर्थ है विस्तार देना या फैलाना। ये चार प्रकार के अडवु आदि ताल (8 मात्रा) में किये जाते हैं और इसके बोल हैं ता तई तई तत् जिन पर इस अडवु का नाम भी आधारित है। इसमें एक स्थान से दूसरे स्थान पर नृत्य क्रियाएँ करते हुए जाते हैं। हाथों और पैरों के साथ ही कटि की क्रियाओं का भी महत्त्व इस अडवु में दिखाई देता है। इसमें पताक, कटकामुख, त्रिपताक, अलपद्म हस्त का प्रयोग किया जाता है।

4. **कुदित्तुमेट्टि अडवु :–** ये भी चार प्रकार के अडवु हैं जिन्हें आदि ताल (8 मात्रा) में किया जाता है और इसके बोल हैं तई हत् तई हित्। तमिल में कुदित्तु का अर्थ है कूदना और मेट्टि का अर्थ है पटकना। इन चारों अडवुओं में पहले पंजों के बल अरमण्डी की स्थिति में सन्तुलन बनाये रखते हुए कूदते हैं और तब एडी को उसी प्रारम्भिक स्थिति में सन्तुलन के साथ शक्ति से पटकते हैं। कटि की क्रियाओं सहित नृत्य करते समय शरीर के संतुलन को इस स्थिति में बनाये रखना एक कठिन कार्य है। सभी चारों अडवुओं में पैरों की क्रियाएँ समान है केवल हाथों की क्रियाओं में परिवर्तन आते हैं। हाथों द्वारा कटकामुख, अलपद्म, पताक और त्रिपताक हस्त मुद्राएँ बनायी जाती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

5. **सरिक्क अडवु अथवा चिल्ल अडवु :–** सरिक्क शब्द सम्भवतः हिन्दी शब्द सरकना से मेल रखता है, क्योंकि इस अडवु में समपाद की स्थिति में रहते हुए पैरों को भूमि पर सरकाते हुए नृत्य क्रियाएँ की जाती हैं। ये चार अडवु हैं जो आदि ताल (8 मात्रा) में किये जाते हैं और इनके बोल तई या तई यित् हैं। इस अडवु में हाथों की विभिन्न स्थितियों का और पताक, कटकामुख व अलपद्म हस्त मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है। कुछ घरानों में इसे चिल्ल अडवु के नाम से भी जाना जाता है।
6. **पक्क अडवु अथवा तत् तई ता हा अडवु :–** नृत्यांगना जयलक्ष्मी ईश्वरन् के अनुसार कलाक्षेत्र में इस अडवु को इसके बोलों के आधार पर तत् तई ता हा अडवु के नाम से जाना जाता था। किन्तु आज अन्य बानियों के आधार पर इस अडवु को पक्क अडवु के नाम से अधिक जाना जाता है। ये चार प्रकार के अडवु केवल त्रिपताक हस्त का प्रयोग करते हैं। पहले पक्क अडवु को रूपकम् ताल (6 मात्रा) में व अन्य तीनों को आदि ताल (8 मात्रा) में किया जाता है। इसकी पादक्रियाएँ शक्ति के साथ पैरों को मारते हुए, पंजों के बल कूदते हुए की जाती हैं। ये चारों ही अडवु अति महत्वपूर्ण हैं और करने में भी कठिन होते हैं। सम्पूर्ण अडवु की प्रस्तुति में नाट्यारम्भ और अरमण्डी की स्थिति बनाये रखना एक चुनौतिपूर्ण कार्य होता है।
7. **तत् तई ताम् अडवु, पइक्कल अडवु अथवा मयि अडवु :–** नृत्यांगना श्रीमती जयलक्ष्मी ईश्वरन् के अनुसार कलाक्षेत्र में इस अडवु को पहले इसके बोलों के आधार पर तत् तई ताम् अडवु के नाम से जाना जाता था। किन्तु आज इस अडवु को पइक्कल अडवु अथवा मयि अडवु के नाम से भी जाना जाता है। ये सात प्रकार के अडवु हैं जो आदि ताल (8 मात्रा) में किये जाते हैं। इसमें शिखर, पताक, कटकामुख, अलपद्म तथा त्रिपताक हस्त मुद्राओं का प्रयोग होता है। इनमें अरमण्डी (अर्धबैठक), मुरुमण्डी (पूर्णबैठक) आदि स्थितियों के साथ पैर ऊँचा उठाने और बढ़ाने जैसी क्रियाओं को भी किया जाता है।
8. **मण्डी अडवु :–** ये दो प्रकार के अडवु मुरुमण्डी (पूर्णबैठक) की स्थिति में किये जाते हैं अतः मुरुमण्डी अडवु अथवा संक्षेप में मण्डी अडवु कहलाते हैं। इन अडवुओं के बोल हैं तांगिड़ तत् तत् धिन्ना तथा ये रूपकम् ताल

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

(6 मात्रा) में किये जाते हैं। भूमि पर पंजों पर भार देते हुए बैठ कर सन्तुलन बनाये रखते हुए इस अडवु को किया जाता है जो प्रारम्भिक शिष्य के लिये कठिन कार्य सिद्ध होता है। इस अडवु में त्रिपताक, कटकामुख व अलपद्म हस्त मुद्राओं का प्रयोग किया है।

9. **तीर्मानम् अडवु अथवा मकुट अडवु** :– इस अडवु के दो विभाग हैं जिनमें प्रत्येक के पाँच भाग हैं और जो किसी भी नृत्त अंग (तीर्मानम्, कोरवै, जति) का समापन दर्शाने के लिये अन्त में तीन बार किये जाते हैं। पाँचों भागों में भिन्न भिन्न तालों का प्रयोग किया जाता है जैसे आदि ताल (8 मात्रा), रूपकम् ताल (6 मात्रा) व खण्ड एकम् ताल (5 मात्रा)। प्रथम विभाग के पाँचों भागों में केवल त्रिपताक हस्त मुद्रा का प्रयोग किया जाता है और इसके पाँचों प्रकारों के बोल क्रमशः हैं, गिणतोम्, तधिंगिणतोम्, तक तधिंगिणतोम्, तक धिकु तधिंगिणतोम् एवं अन्तिम में इनका समन्वय।

दूसरे विभाग के पाँचों भागों में पताक व अलपद्म हस्त मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है एवं इसके पाँचों प्रकारों के बोल क्रमशः हैं, तरिकिटतोम्, किटतक तरिकिट तोम्, तक किटतक तरिकिट तोम्, तक धिकु किटतक तरिकिट तोम् एवं अन्तिम में इनका समन्वय। ये सबसे महत्वपूर्ण अडवुओं में से एक हैं क्योंकि नृत्तांगों का अन्त इन्हीं से होता है।

10. **ता हत झम् तरि ता अडवु** :– ये इस भाग का एकमात्र अडवु है जो रूपकम् ताल (6 मात्रा) में किया जाता है। इसमें विपरीत हाथ और पैर के प्रयोग से नृत्य किया जाता है। पताक, कटकामुख, अलपद्म हस्त मुद्राओं के प्रयोग के साथ प्रस्तुत होने वाले इस अडवु को इसके बोल ता हत झम् तरि ता के आधार पर ही जाना जाता है। कुछ बानियों में इसे तीर्मानम् अडवु के तधिंगिणतोम् अडवु के साथ ही सिखाया जाता है भिन्न रूप में नहीं।

11. **तत् धित् ता अडवु** :– यह भी एकल अडवु है और इसे भी इसके बोल तत् धित् ता के आधार पर ही जाना जाता है। यह एक छोटा अडवु है जिसका प्रयोग प्रायः एक सेतु की भांति एक अडवु को दूसरे अडवु से जोड़ने के लिये किया जाता है। आदि ताल (8 मात्रा) में प्रस्तुत होने वाले इस अडवु को अलपद्म, कटकामुख व पताक हस्त मुद्राओं के साथ किया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कुछ विद्वान कलाकारों के अनुसार यह एकमात्र अडवु है जो बाँयें से प्रारम्भ होता है अन्य इसे भी दाहिने से ही प्रारम्भ करते हैं।

12. तट्ट मेट्टि अडवु :– ये पाँच प्रकार के अडवु केवल पैरों से किये जाते हैं। इसमें पैरों की स्थिति में कुछ परिवर्तन आता है और दाहिने पैर का पंजा अरमण्डी में होते हुए भी सामने की ओर रहता है और बाँया पैर अरमण्डी की सही स्थिति में ही रहता है। इससे पैरों की स्थिति कुछ 90 डिग्री के कोण की भांति दिखती है। कुछ घरानों अथवा बानियों में इस अडवु को पंचनडै (चलने के पाँच प्रकार) अडवु भी कहते हैं।

ये अडवु ताल की पाँच जातियों (तिश्र, चतुरश्र, खण्ड, मिश्र, संकीर्ण) पर आधारित होने के कारण पंचजाति अडवु भी कहलाते हैं। ये एकमात्र ऐसे अडवु हैं जिनका प्रयोग अभिनय प्रस्तुत करने के लिये भी किया जाता है। हाथों का प्रयोग न होने के कारण इन्हें करते हुए हाथों से किसी भी कथा को दर्शाया जा सकता है।

13. कुदित्तु अडवु :– अडवु के इस विभाग का वर्णन श्रीमती जयलक्ष्मी ईश्वरन् ने अपनी पुस्तक में पइक्कल अडवु के नाम से किया है। इस विभाग के अन्तर्गत दो प्रकार के अडवु सिखाये जाते हैं। विभिन्न बानियों में इनके करने के स्वरूप में अन्तर न होने पर भी इन्हें प्रस्तुत करने के लिये प्रयुक्त होने वाले ताल और बोल भी दो प्रकार के हैं। रूपकम् ताल (6 मात्रा) में इसे तांगिड़ तत् तत् धिन्ना बोल के साथ और आदि ताल (8 मात्रा) में इसे तत् तैयुम् तत् ता तई बोल के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

इसमें कटकामुख व अलपद्म हस्त मुद्राओं का प्रयोग होता है। इसे आगे, पीछे, दोनों ओर कूदते हुए किया जाता है इसी कारण इस अडवु समूह को कुदित्तु अडवु अथवा पइक्कल अडवु (क्योंकि दोनों का ही अर्थ कूदना होता है) अर्थात कूदने वाले अडवु कहलाते हैं।

14. कत्ति अडवु :– यह एकमात्र अडवु भी श्रीमती जयलक्ष्मी ईश्वरन् द्वारा पइक्कल अडवु के अन्तर्गत ही वर्णित किया गया है। कत्ति का अर्थ है चाकू या छुरी। इसमें हाथ को घुमा कर सामने की ओर फैलाया जाता है जैसे चाकू मारने के लिये हाथ को आगे ले जा रहे हों किन्तु सौम्यता के साथ। पैर भी कूद कर पीछे की ओर फैलाया जाता है। इसमें पताक और

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

शिखर हस्त का प्रयोग होता है। इस अडवु के बोल भी तत् तैयुम् तत् ता तई हैं और इसे भी आदि ताल (8 मात्रा) में प्रस्तुत किया जाता है।

15. **कर्तरी अडवु :–** इस एकमात्र अडवु का उल्लेख भी श्रीमती जयलक्ष्मी ईश्वरन् ने अपनी पुस्तक में पइक्कल अडवु के अन्तर्गत ही किया है। कर्तरी का अर्थ है कैंची और इस अडवु में कर्तरीमुख हस्त का ही प्रयोग होता है, साथ ही दोनों ओर व पीछे की ओर कूदने के पश्चात् पैरों की स्थिति भी स्वस्तिक पादभेद में आती है जिससे पैर कैंची के समान ही आपस में गुँथे हुए से दिखाई पड़ते हैं। इस अडवु के बोल भी तत् तैयुम् तत् ता तई हैं और इसे भी आदि ताल (8 मात्रा) में प्रस्तुत किया जाता है।

16. **तई तई तत् ता अडवु :–** इस अडवु श्रेणी के अन्तर्गत श्रीमती जयलक्ष्मी ईश्वरन् ने अपनी पुस्तक में तीन अडवुओं का वर्णन किया है जिसमें से तीसरे अडवु को आज भिन्न श्रेणी के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्रथम अडवु में कटकामुख व अलपद्म हस्त मुद्राओं का तथा दूसरे अडवु में केवल त्रिपताक हस्त मुद्रा का प्रयोग होता है। दोनों ही अडवुओं में पैरों को दोनों ओर व आगे की ओर फैलाया जाता है। हाथों और पूरे शरीर में भी दोनों ओर तथा आगे जाते समय खिंचाव दिखाई देता है। इस अडवु को तिश्र गति (तकिट) आदि ताल (8 मात्रा) में प्रस्तुत किया जाता है।

17. **सरुक्कल अडवु :–** नृत्यांगना जयलक्ष्मी ईश्वरन् के अनुसार तई तई तत् ता अडवु की श्रेणी में आने वाले इस अडवु को सरुक्कल अडवु कहते हैं। तमिल शब्द सरुक्कल का अर्थ है फिसलना अथवा सरकना। इसमें मुरुमण्डी की स्थिति में कूद कर अरमण्डी की स्थिति में पैर को बिना भूमि से उठाये पीछे की ओर सरकाते हैं। हाथों में शिखर व पताक हस्त मुद्राओं का प्रयोग होता है। तई तई तत् ता बोलों के साथ इस अडवु को तिश्र गति (तकिट) आदि ताल (8 मात्रा) में तथा तांगिड़ तत् तत् धिन्ना बोल के साथ रूपकम् ताल (6 मात्रा) में भी इसे प्रस्तुत किया जाता है।

चूँकि भरतनाट्यम् तमिलनाडु का नृत्य है अतः इन अडवु समूहों के नाम भी तमिल भाषा में ही प्राप्त होते हैं। इन सभी अडवुओं की गिनती करने पर हमें लगभग 55 अडवु प्राप्त होते हैं। कई और भी ऐसे अडवुओं का प्रयोग नृत्य रचना के समय किया जाता है जिन्हें ऊपर वर्णित अडवुओं की किसी श्रेणी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में स्थान प्राप्त नहीं होता और न ही भिन्न श्रेणी में इनकी शिक्षा दी जाती है किन्तु ये भी इस नृत्य का आधारभूत अंग ही कहलाते हैं।

भरतनाट्यम् के ये सभी श्रेणीबद्ध व अन्य आधारभूत अडवु आज भी सर्वप्रथम सिखाये जाते हैं। पूर्ण रूप से इन अडवुओं की शिक्षा में लगभग एक वर्ष का समय लगता है। यदि इनकी उचित शिक्षा प्राप्त हो गई तब भरतनाट्यम् नृत्य को सीखना और समझना अत्यन्त सरल हो जाता है। अडवुओं की विधिवत् शिक्षा के बाद ही इस नृत्य की गहन शिक्षा प्रारम्भ होती है।

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो इन सभी अडवुओं के स्वरूप के पीछे जीवन में कारगर सिद्ध होने वाली कोई एक कथा या एक कारण अवश्य छिपा रहता है। इस तथ्य को मैं पूर्णतया स्वीकार करते हुए इस विषय में और अधिक जानने का प्रयत्न करती रहती हूँ। सामान्यतया प्रत्येक भरतनाट्यम् कलाकार अपने स्वतः के दृष्टिकोण से इन अडवुओं को समझता और समझाता भी है।

यदि कुछ अडवुओं को उदाहरण स्वरूप लिया जाये तो मेरा मानना है कि तट्टडवु जीवन में स्थिरता का प्रतीक हैं तो नाट्टडवु हमें जीवन में आवश्यकता होने पर झुकना और सामंजस्य बैठाना सिखाते हैं। वहीं परवल अडवु गति और कुदित्तुमेट्टि अडवु जीवन की चंचलता को दर्शाते हैं। सरिक्क अडवु सौम्यता तो पक्क अडवु धैर्य सिखाते हैं, मण्डी अडवु में धरती से जुड़ाव और मेयि अडवु में हम धरती के साथ ही आकाश तक पहुँचने का भी प्रयत्न करते हैं।

इसी प्रकार अन्य अडवुओं में भी हम जीवन से जुड़ी कुछ बातों को ढूँढ सकते हैं आवश्यकता है तो केवल वैज्ञानिक समझ, गहन चिन्तन और सूक्ष्म दृष्टिकोण की। अडवुओं के पीछे किसी कथा अथवा दृष्टिकोण का अस्तित्व प्राप्त हो या न हो, इस तथ्य को कदापि नकारा नहीं जा सकता कि इन अडवुओं के बिना भरतनाट्यम् नृत्य का कोई अस्तित्व ही सम्भव नहीं है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्दर्भ :

1. Nityasumangali – Devadasi Tradition in South India; Saskia C. Kersenboom; Motilal Banarasidass Publishers Pvt. Ltd , 1987; ISBN:81-208-1527-0
2. Nityasumangali – Devadasi Tradition in South India; Saskia C. Kersenboom; Motilal Banarasidass Publishers Pvt. Ltd, 1987; ISBN:81-208-1527-0
3. Bharatnatyam – yesterday today tomorrow; Mrinalini Sarabhai; A Journal, Indian and World Arts Publications, 1985.
4. Natyashastra of Bharatamuni- Vol-I, Chapter-4; Editor-Dr. K. Krishnamurti, Oriental Institute, Vadodara (1992).
5. Natyashastra of Bharatamuni- Vol-I, Chapter-4; Editor-Dr. K. Krishnamurti, Oriental Institute, Vadodara (1992).
6. Bharatnatyam: How to... A step by Step Approach to Learn the Classical Dance form; Jaylakshmi Eshwar; B.R. Rhythms, Delhi (2010); ISBN:13:978-81-88827145

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भरतनाट्यम् में हस्त मुद्राओं का महत्व

दक्षिण भारत के तमिलनाडु राज्य में उत्पन्न होने वाला एवं विश्व के प्रसिद्ध नृत्यों में से एक भरतनाट्यम्, भारत के प्राचीनतम नृत्यों में से है। यह लगभग 2000 वर्ष प्राचीन माना जाता है। इसका जन्म मन्दिरों में हुआ था जहाँ इसे देवदासियाँ ईश्वराराधना के रूप में प्रस्तुत करती थीं। ये, वे नृत्यांगनाएँ थीं जिन्हें बाल्यावस्था में ही मन्दिर में स्थापित आराध्य ईश्वर को समर्पित कर दिया जाता था।

यहाँ वे नृत्य, संगीत, उपचार विधियों और पूजन विधियों की शिक्षा ग्रहण करती थीं एवं नृत्य संगीत कला में दक्ष हो जाने के पश्चात् उचित समय पर इनका विवाह मन्दिर में स्थित ईश्वर की देव प्रतिमा से हो जाता था।

जिनकी कभी मृत्यु नहीं हो सकती ऐसे ईश्वर की पत्नी होने के कारण वे नित्यसुमंगली भी कहलाती थीं। इसी कारण समाज में इनका ऊँचा प्रतिष्ठित स्थान था एवं इनका प्रमुख कार्य अपने सुन्दर भक्तिपूर्ण नृत्य से ईश्वर को प्रसन्न रखना था जिससे कि उस राज्य पर कोई विपदा न आये।[1]

इन देवदासियों द्वारा प्रस्तुत होने के कारण यह नृत्य दासीआट्टम् अर्थात् दासियों का नृत्य और सादिर अर्थात् प्रस्तुति के नाम से लोकप्रिय बना। मन्दिरों के पश्चात् राजदरबार में सादिर अथवा दासीआट्टम् को विकसित होने के लिये सम्पूर्ण आश्रय मिला जहाँ नर्तकियाँ राजदासियों के रूप में इसे प्रस्तुत करती थीं।

मुग़लकाल में इस नृत्य के स्वरूप में कुछ परिवर्तन अवश्य आये किन्तु अंग्रेज़ों के समयकाल में देवदासी परम्परा के पतन का प्रभाव इस नृत्यकला पर भी पड़ा और इस नृत्य का भी बुरी परह पतन हुआ। परन्तु 19वीं शती में तन्जौर के राजा सरफोजी द्वितीय के राजदरबार में कार्यरत चार विद्वान भाइयों – चिन्नैया, पोन्नैया, शिवानन्दम् और वडिवेलु ने देवदासियों और उनकी अद्भुत कला इस नृत्य को सहेजने का अपना अभूतपूर्व प्रयत्न प्रारम्भ किया।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवदासियों की सामाजिक परिस्थिति में अधिक परिवर्तन तो नहीं आया किन्तु इस नृत्य को एक स्पष्ट एवं सुनिश्चित स्वरूप प्राप्त हो सका। तन्जौर भाइयों के नाम से प्रसिद्ध इन भाइयों ने दासीआट्टम् के प्रारम्भिक क्रम अडवुओं और अलारिपु से लेकर तिल्लाणा तक के सम्पूर्ण मार्गम् की भी रचना की। उनके अथक प्रयासों से सादिर मंच पर प्रस्तुत करने योग्य बन कर पुनः स्थापित हुआ, किन्तु इस नृत्य को अभी तक, आज के समाज में प्रचलित नाम और स्वरूप प्राप्त नहीं हुआ था। यह परिवर्तन 20वीं शती में श्री ई कृष्ण अय्यर एवं गुरु श्रीमती रुक्मिणी देवी अरुण्डेल द्वारा किया गया।

इन गुणीजनों के कारण ही पतन और लुप्त होने की कगार पर पहुँच चुके इस नृत्य का पुनः उत्थान सम्भव हो पाया और यह समाज में पुनः प्रतिष्ठा के साथ स्थापित हो पाया। देवदासियों की धूमिल हो चुकी छवि से इस नृत्य को दूर करने के लिये उन्होंने इसे एक नवीन नाम दिया – भाव, राग और ताल से सम्पूर्ण नृत्य अर्थात् भरतनाट्यम्।

यही नहीं, गुरु रुक्मिणी देवी ने इस नृत्य के मार्गम् में सम्मिलित हो चुकी अभद्र क्रियाओं को हटा कर इस नृत्य को पुनः शुद्ध एवं मर्यादित स्वरूप प्रदान किया और उसे एक बार और ईशाराधना से जोड़ा। आज भरतनाट्यम् उन्हीं के और उनके जैसे अन्य विद्वान गुरुजनों जैसे गुरु मीनाक्षी सुन्दरम् पिल्लै, गुरु मइलापुर गौरी अम्मां, गुरु मुत्तुकुमार पिल्लै, अभिनय रानी बाल सरस्वती आदि के अथक प्रयासों के कारण ही सभी कलाओं में उत्कर्ष के चरम पर पहुँचा है एवं देश विदेश का ख्यातिलब्ध नृत्य बन गया है।

अभिनय रानी बाल सरस्वती के अनुसार भरतनाट्यम् नाट्य योग या कलात्मक योग है।[2] योग शब्द के प्रयोग से ही हम समझ सकते हैं कि इस नृत्य को सीखने में कितनी गहन साधना और लगन की आवश्यकता होती होगी, क्योंकि किसी भी प्रकार का योग, गहन साधना के बिना असम्भव है। भरतनाट्यम् नृत्य अपने विशिष्ट अंग संचालन के लिये प्रसिद्ध है। कुछ विद्वानों के कथनानुसार भरतनाट्यम् का आंगिक पक्ष व उसकी भाव भंगिमाएँ अर्थात् उसका आंगिकाभिनय एक अग्निशिखा के समान है, जो कभी तीव्र होती है तो कभी मद्धम हो जाती है।

भरतनाट्यम् नृत्य के आधारभूत अक्षर अडवु कोमल एवं कठोर अंग संचालन द्वारा प्रस्तुत किये जाते हैं। इन अडवुओं के विभिन्न रूप में किये गये

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संयोग से ही भरतनाट्यम् नृत्य की सम्पूर्ण आंगिक क्रियाओं की रचना होती है। कोमल व कठोर अंग संचालन को सौम्य समन्वय और समान सन्तुलन के साथ प्रस्तुत करना, एक से दूसरी शारीरिक स्थिति में अपनी भंगिमाओं को परिवर्तित कर लेना कठिन कार्य है व इसे केवल तन्मय होकर की गई साधना द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

एक क्रिया से दूसरी क्रिया का यह परिवर्तन इतना सूक्ष्म होना चाहिये कि दर्शकों को वह परिवर्तन समझ ही न आये, वे केवल नृत्य प्रस्तुति को मन्त्रमुग्ध होकर देखते रह जायें।

अडवु, मुखजाभिनय और भावों की प्रस्तुति के अतिरिक्त भरतनाट्यम् के आंगिक अभिनय में सम्पूर्ण नृत्य प्रस्तुति हेतु एक अति आवश्यक तत्त्व होता है – हस्त मुद्राएँ। भरतनाट्यम् ही नहीं अपितु प्रत्येक नृत्य में हस्त मुद्राओं का विशिष्ट स्थान है। हस्त मुद्राओं का अर्थ है हाथों से बनी भंगिमाएँ। कथा कहने के लिये, किसी वस्तु का वर्णन करने के लिये अथवा भावों को प्रस्तुत करने हेतु भी नर्तक व नर्तकी प्रमुख रूप से इन्हीं हस्त मुद्राओं का ही सहयोग लेते हैं।

नृत्य में इस मुद्रा शब्द का प्रयोग अधिक प्राचीन नहीं है। मुद्रा का शाब्दिक अर्थ है धन। व्याकरण के अनुसार मुद्रा शब्द मोद् धातु से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है आनन्द। मुद्रा शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग हमें कालिका पुराण में प्राप्त होता है। स्वयं के लाभ और उत्थान के लिये तन्त्र पूजन में हाथों से कुछ भंगिमाएँ अर्थात् मुद्राएँ बनायी जाती हैं। तन्त्र क्रिया में प्रयुक्त ये भंगिमाएँ ही मुद्रा कहलाती हैं।

तन्त्र में जहाँ मुद्राओं का प्रयोग स्वतः के उत्थान के लिये होता है वहीं नृत्य में मुद्रा शब्द के अन्तर्गत की जाने वाली हस्त भंगिमाओं का प्रयोग किसी कथा, वस्तु अथवा भाव को प्रदर्शित करने हेतु किया जाता है।

नृत्य में हाथों से बनी इन भंगिमाओं को वर्णित करने के लिये हमें सभी प्राचीन ग्रन्थों जैसे नाट्यशास्त्र, अभिनय दर्पण, संगीत रत्नाकर आदि में केवल हस्त शब्द ही प्राप्त होता है। आज हम सरल भाषा में उसी हस्त शब्द के स्थान पर मुद्रा या हस्त मुद्रा शब्दों का प्रयोग करने लगे हैं। इन भंगिमाओं को दर्शाने के लिये मुद्रा शब्द का प्रथम प्रयोग हमें 18वीं शती में आचार्य पण्डरीक विठ्ठल द्वारा लिखे गये ग्रन्थ नर्तन निर्णय में ही प्राप्त होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु यह परिर्वन कब, कैसे और किन कारणों से हुआ इस विषय में न किसी पुस्तक में वर्णन प्राप्त होता है और न ही गुरु शिष्य परम्परा के अन्तर्गत हम अपने गुरुजनों से इस परिवर्तन के विषय में जानते हैं।

हम केवल अनुमान लगा कर कह सकते हैं कि सम्भवतः यह परिवर्तन अंग्रेज़ों के समयकाल में आया हो। संस्कृत के हस्त शब्द को अंग्रेज़ी भाषा में Hand और सामान्य हिन्दी में हाथ कहते हैं। केवल इस एक शब्द हाथ अथवा Hand से हाथों से बनी भंगिमाओं और विभिन्न रचनाओं के विशाल स्वरूप को कैसे व्यक्त किया जा सकता है, यह प्रश्न उन सबके मन में कौंधता है जो संस्कृत भाषा के विस्तृत स्वरूप को नहीं समझ सकते हैं।

सम्भवतः नृत्य को दर्शकों के रूप में देखने वाले अंग्रेज़ी काल के विद्वानो ने इस शब्द के अर्थ को अंग्रेज़ी भाषा में और अधिक स्पष्ट करने के लिये इसमें Hand के साथ Gesture शब्द को भी जोड़ दिया। Gesture शब्द का अर्थ है मुद्रा अर्थात् हाथों से बनी कलात्मक क्रियाएँ। तदनन्तर जब विद्वानों ने पुनः इस Hand Gesture शब्द का अंग्रेज़ी भाषा से हिन्दीकरण किया तब वह Hand Gesture से परिवर्तित होकर दो शब्दों हस्त मुद्रा के रूप में प्रचलित हो गया। सम्भवतः लगभग इसी परिवर्तन समय के समीप ही आचार्य पण्डरीक विठ्ठल ने अपने ग्रन्थ की रचना की होगी और समय के साथ चलते हुए उन्होंने अपने ग्रन्थ में हस्त के स्थान पर मुद्रा शब्द का प्रयोग उचित समझा।

आज, भारत में प्रचिलित लगभग सभी नृत्यों में जिन हस्त मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है वे आचार्य नन्दिकेश्वर द्वारा रचित ग्रन्थ, अभिनय दर्पण ग्रन्थ से लिये जाते हैं। अभिनय दर्पण में शरीर के विभिन्न अंगों की शारीरिक क्रियाओं अर्थात् आंगिक अभिनय की क्रियाओं का विस्तृत वर्णन है जो स्पष्ट भी है और अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा सरल भी है। आंगिक अभिनय पर आधारित इस ग्रन्थ में हस्त भेदों के अन्तर्गत दो प्रकार के हस्तों का वर्णन है –

असंयुत हस्त अर्थात् एक हाथ से की जाने वाली मुद्राएँ व संयुत हस्त अर्थात् दोनों हाथों से की जाने वाली मुद्राएँ।

सभी नृत्यों और भरतनाट्यम् में भी नृत्य प्रस्तुतियों हेतु इन्हीं हस्तों का प्रयोग किया जाता है। इस ग्रन्थ में असंयुत व संयुत हस्तों के अतिरिक्त नृत्त हस्त, देव हस्त, दशावतार हस्त, नवग्रह हस्त, जाति हस्त, बान्धव हस्त आदि

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

का भी विस्तृत वर्णन है, जिन्हें नर्तक व नर्तकी अपनी नृत्य रचनाओं में उपयोगितानुसार प्रयोग में लाते हैं। इन हस्तों को हाथों से बनाने की विधि तथा उसके विनियोग अर्थात् प्रयोग करने की विधियाँ भी इस ग्रन्थ में विस्तृत रूप से वर्णित हैं।

भरतनाट्यम् नृत्य प्रशिक्षण में इन सभी श्लोकों का सम्पूर्ण अध्ययन कर इसे अपनी स्मृति में बसा लेना अनिवार्य होता है। किन्तु ये हस्त केवल इस ग्रन्थ पर आधारित नहीं हैं, कुछ ऐसे हस्तों का भी प्रशिक्षण दिया जाता है जिनका वर्णन इस ग्रन्थ में नहीं है, वरन् ये हमें परम्परागत रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी गुरु शिष्य परम्परा द्वारा प्राप्त होते रहे हैं। वहीं कुछ ऐसे भी हस्त हैं जो वर्णन के अनुरूप न प्रस्तुत होकर नृत्य में भिन्न रूप से प्रस्तुत किये जाते हैं।

उदाहरण के रूप में यदि देखा जाये तो अभिनय दर्पण के अनुसार असंयुत हस्त 28 एवं संयुत हस्त 23 प्रकार के हैं। इनमें से कुछ हस्तों को बनाने की प्रक्रिया ग्रन्थ में केवल एक ही रूप में वर्णित की गई हैं, किन्तु गुरु शिष्य परम्परा में दिये जाने वाले प्रशिक्षण के अनुसार भरतनाट्यम् के गुरुजन इन्हें विभिन्न प्रकारों से करना अपने शिष्यों को सिखाते हैं। जैसे --

उदा. 1 – असंयुत हस्त के श्लोक में कटकामुख हस्त, ग्रन्थ में एक ही प्रकार से वर्णित है किन्तु भरतनाट्यम् सिखाते समय गुरुजन उसे तीन प्रकार से कराते हैं अतः असंयुत हस्त श्लोक की यह पंक्ति भी तीन बार दोहराई जाती है।

अभिनय दर्पण में वर्णित 28 असंयुत हस्त इस प्रकार हैं –

पताकस्त्रिपताकोऽर्धपताकः कर्तरीमुखः।
मयूराख्योऽर्धचन्द्रश्च अरालः शुकतुण्डकः।।
मुष्टिश्च शिखराख्यश्च कपित्थः कटकामुखः।
सूची चन्द्रकला पद्मकोशः सर्पशिरस्तथा।।
मृगशीर्षः सिंहमुखः कांगुलश्चालपद्मकः।
चतुरो भ्रमरश्चैव हंसास्यो हंसपक्षकः।।
सन्दंशो मुकुलश्चैव ताम्रचूडस्त्रिशूलकः।
इत्यसंयुतहस्तानामष्टाविंशतिरीरिता।।[3] (88-92)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इनमें से "मुष्टिश्च शिखराख्यश्च कपित्थः कटकामुखः" यह पंक्ति तीन बार दोहराई जाती है और केवल कटकामुख हस्त को परिवर्तनों के साथ तीन भिन्न रूपों में प्रस्तुत किया जाता है।

उदा. 2 – ग्रन्थानुसार संयुत हस्त का अन्तिम तेइसवाँ हस्त भेरुण्ड है। किन्तु भरतनाट्यम् की प्रयोग परम्परानुसार इसमें एक हस्त 'अवहित्थ' और जोड़ा जाता है जिसका इस ग्रन्थ में वर्णन नहीं है। इस परिवर्तन से संयुत हस्तों की संख्या 23 से परिवर्तित होकर 24 हो जाती है। अभिनय दर्पण में वर्णित 23 संयुत हस्त इस प्रकार हैं –

अंजलिश्च कपोतश्च कर्कटः स्वस्तिकस्तथा।
डोलाहस्तः पुष्पपुट उत्सङ्गः शिवलिङ्गकः।।
कटकावर्धनश्चैव कर्तरीस्वस्तिकस्तथा।
शकटं शंखचक्रेच सम्पुटः पाशकीलकौ।।
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च गरुडो नागबन्धकः।
खट्वा भेरुण्ड इत्येते संख्याता संयुताः कराः।।
त्रयोविंशतिरित्युक्ताः पूर्वगैर्भरतादिभिः।।[4] (172-175)

परम्परानुसार अतिरिक्त हस्त अवहित्थ जोड़ने से संयुत हस्त श्लोक की अन्तिम पंक्ति इस प्रकार से परिवर्तित होती है –

खट्वा भेरुण्डकाख्यश्च अवहित्थस्तथैव च।।

अवहित्थ हस्त नाट्यशास्त्र, संगीत रत्नाकर व भरतार्णव ग्रन्थों में वर्णित है। नाट्यशास्त्र व संगीत रत्नाकर में इसके स्वरूप और प्रयोग का वर्णन परम्परानुसार सिखाये जाने वाले अवहित्थ से भिन्न है किन्तु नाम समान है, वहीं भरतार्णव में इसके स्वरूप एवं प्रयोग का वर्णन परम्परानुसार समान है परन्तु इस हस्त का नाम अलपद्म स्वस्तिक है।

उदा. 3 – अभिनय दर्पण में देवहस्तों के अन्तर्गत वर्णित पार्वती हस्त के अनुसार भगवती पार्वती को दोनों हाथों में अर्धचन्द्र हस्त द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इनमें से बायाँ हाथ ऊपर की ओर अभय अर्थात् रक्षण देने के अर्थ में और दाहिना हाथ नीचे की ओर वरदान देने के अर्थ में प्रदर्शित किये जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु परम्परानुसार भरतनाट्यम् में जब हम पार्वती हस्त का प्रयोग करते हैं तब ग्रन्थ का यह श्लोक तो अवश्य सीखते हैं किन्तु प्रयोग में परम्परानुसार दाहिना हाथ ऊपर और बायाँ हाथ नीचे की ओर रखते हैं, जो प्रयोगानुसार ग्रन्थ के बिल्कुल विपरीत है पर अर्थानुसार ग्रन्थं के बिल्कुल समान है। देवी पार्वती को वर्णित करता यह श्लोक है –

ऊर्ध्वाधः प्रसृतावर्धचन्द्राख्यौ वामदक्षिणौ।
अभयो वरदश्चैव पार्वत्या कर ईरितः।।[5] (207)

इस प्रकार हम यह समझ सकते हैं कि भरतनाट्यम् में, अभिनय दर्पण के हस्तों के अतिरिक्त और कुछ हस्तों का प्रयोग भी किया जाता है जो कि मुख्य रूप से नाट्यशास्त्र, संगीत रत्नाकर, भरतार्णव आदि ग्रन्थों से लिये जाते हैं और साथ ही अभिनय दर्पण में वर्णित हस्तों को नृत्य में भिन्न रूप में भी प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार शिक्षण के समय गुरुजन अन्य ग्रन्थों की मुद्राओं का भी प्रशिक्षण आवश्यकतानुसार समय समय पर प्रदान करते रहते हैं।

आज भी शिक्षण प्रदान करते समय गुरुजन अभिनय दर्पण ग्रन्थ के अनुसार एवं परम्परानुसार दोनों ही प्रकार से हस्तों की शिक्षा प्रदान करते हैं।

असंयुत व संयुत, इन सभी हस्तों के प्रयोग की विभिन्न विधियाँ भी इस ग्रन्थ में वर्णित हैं। इनमें से कुछ अर्थ सहित उदाहरण निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत हैं–

अभिनय दर्पण में वर्णित असंयुत हस्त के विभाग मयूर हस्त का विनियोग अर्थात् प्रयोग –

मयूरास्ये लतायां च शकुने वमने तथा।
अलकस्यापनयने ललाटतिलकेषु च।।
नद्युदकस्य निक्षेपे शास्त्रवादे प्रसिद्धकें।
एवमर्थेषु युज्यन्ते मयूरकरभावनाः।।[6] (109-110)

अर्थात् – मोर, बेल, शगुन, उल्टी करने, बाल सुलझाने, तिलक लगाने, नदी के जल को छिड़कने, शास्त्रार्थ करने व किसी की प्रसिद्धि करने में मयूर हस्त का प्रयोग होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अभिनय दर्पण में वर्णित संयुत हस्त प्रकार अंजलि हस्त का विनियोग अर्थात् प्रयोग –

देवतागुरुविप्राणां नमस्कारेष्वनुक्रमात्।
कार्यःशिरोमुखोरस्थो विनियोगेऽ्जलिर्बुधैः।।[7] (176)

अर्थात् – देवता, गुरु और ब्राह्मण को नमस्कार करते समय अंजलि हस्त का उपयोग किया जाता है।

अभिनय दर्पण ग्रन्थ में इन सभी हस्त भेदों के जो प्रयोग बताये गये हैं यह आवश्यक नहीं है कि केवल इन्हीं का प्रयोग नृत्य में किया जाये, इसके विपरीत कई बार हम नृत्य में इन मुद्राओं के माध्यम से कुछ ऐसी वस्तुओं को प्रदर्शित करते हैं जिनका वर्णन ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता जैसे –

उदा. 1 – अभिनय दर्पण में असंयुत हस्त 'पताक' के विनियोग की पहली ही पंक्ति में एक शब्द 'वने' आता है, जिसका अर्थ है वन अथवा जंगल, किन्तु भरतनाट्यम् प्रदर्शन के समय यदि हमें वन दर्शाना हो तो हम संयुत हस्त कर्कट का ही प्रयोग करते हैं जबकि 'कर्कट' हस्त के विनियोग में वन के रूप में प्रयोग कहीं वर्णित नहीं है केवल 'शाखोन्नमने' अर्थात् पेड़ की डाल को नीचे खींचना ही दर्शाया जाता है।

उदा. 2 – अभिनय दर्पण में हिरण को दर्शाने के लिये असंयुत हस्त 'मृगशीर्ष' अर्थात् हिरण का सिर, इस हस्त का उल्लेख किया गया है, और इस हस्त के विनियोग में भी एक शब्द 'मृगमुखे' अर्थात् हिरण का मुख आता है, किन्तु नृत्य में जब भी हम हिरण प्रदर्शित करते हैं तब हम सदा ही असंयुत हस्त 'सिंहमुख' अर्थात् शेर का मुख का ही प्रयोग करते हैं, जबकि इस हस्त के विनियोग में हिरण प्रदर्शित करने का कोई वर्णन नहीं है।

उदा. 3 – अभिनय दर्पण में वर्णित संयुत हस्त मुद्रा शकटम् का शब्दार्थ बैलगाड़ी होता है इसके विपरीत इस हस्त का प्रयोग केवल राक्षसों और दानवों को प्रदर्शित करने के लिये किया जाता है।

उदा. 4 – भरतनाट्यम् नृत्य में कई बार आँखों से क्रोध दर्शाने के लिये हम एक ऐसी मुद्रा का प्रयोग करते हैं जिसका अभिनय दर्पण ग्रन्थ में कहीं उल्लेख नहीं है। अंगूठे व प्रथम दो अंगुलियों को आमने सामने सीधा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

खोल कर व अन्य दो अंगुलियों को बन्द कर बनाई जाने वाली इस मुद्रा का नाम त्रिक् है जो हमें ग्रन्थ नहीं वरन् परम्परा से प्राप्त होती रही है।

उदा. 5 – अभिनय दर्पण में वर्णित असंयुत हस्त चतुर और हंसास्य का प्रयोग प्रायः ही सुन्दरता दर्शाने के लिये किया जाता है किन्तु इन हस्तों के विनियोगों में कहीं भी इस प्रयोग का उल्लेख नहीं है। चतुर हस्त के विनियोग में हमें 'सरसे' अर्थात् सौम्य अवश्य प्राप्त होता है किन्तु सुन्दरता प्रदर्शित करने हेतु इस हस्त का प्रयोग हमें परम्परा से ही प्राप्त हो पाया है।

इस प्रकार के ऐसे अनेकों उदाहरण हमें प्राप्त हो सकते हैं, जिनसे हम देख सकते हैं कि भरतनाट्यम् की प्रायोगिक परम्परा ने भी हस्त मुद्राओं के महत्त्व को समझते हुए किस प्रकार से इन्हें समृद्ध किया।

सम्भव है कि कोई ऐसा ग्रन्थ रहा हो जिसमें ये सभी उल्लेख प्राप्त हों और जो समय के साथ लुप्त हो गया हो अथवा यह भी सम्भव है कि यह सभी नवीन प्रयोग हमारे गुरुजनों की ही देन हो।

इन सभी हस्तों को सीख कर इनका मनन करना भरतनाट्यम् सीखने वालों के लिये अनिवार्य है क्योंकि इनका सही प्रयोग सीखने से नृत्य प्रस्तुति में सरलता व सहजता आती है। सही प्रयोग के अभाव में, भूलवश गलत हस्त बना देने से कभी कभी गीत के अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है।

अतः यह स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है कि इन हस्तों का अर्थ सहित मनन करने से नर्तक नर्तकी की अभिनय क्षमता व रचना क्षमता बढ़ती है और साथ ही वे नृत्य प्रस्तुतियों में भी भूल होने की सम्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

कुल मिलाकर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन सभी हस्तों की सहायता से भरतनाट्यम् नर्तक व नर्तकियों को इतनी अथाह सामग्री मिल जाती है कि वे सीखे हुए पद की सम्पूर्ण कथा को सरल रूप में दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत कर सकें साथ ही स्वयं भी किसी नृत्यांग की संरचना कर सकें।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्दर्भ :

1. Devadasi System in Medieval Tamil Nadu; Dr. K. Sadashivan; CBH Publications (1993); ISBN:81-85-381-32-1
2. Quarterly, Journal of the National Centre of Performing Arts, Bombay, 1982.
3. Bharatiya Natya Parampara & Abhinaya Darpan ; Shloka- 88-92; Vachaspati Garola; Chaukhamba Surbharti Prakashan (2006); ISBN:81-7084-047-3
4. Bharatiya Natya Parampara & Abhinaya Darpan ; Shloka- 172-175; Vachaspati Garola; Chaukhamba Surbharti Prakashan (2006); ISBN:81-7084-047-3
5. Bharatiya Natya Parampara & Abhinaya Darpan ; Shloka- 207-208; Vachaspati Garola; Chaukhamba Surbharti Prakashan (2006); ISBN:81-7084-047-3
6. Bharatiya Natya Parampara & Abhinaya Darpan ; Shloka- 109-110; Vachaspati Garola; Chaukhamba Surbharti Prakashan (2006); ISBN:81-7084-047-3
7. Bharatiya Natya Parampara & Abhinaya Darpan ; Shloka- 176; Vachaspati Garola; Chaukhamba Surbharti Prakashan (2006); ISBN:81-7084-047-3

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय संगीत (गायन, नर्तन एवं वादन) में ताल की उपादेयता : भरतनाट्यम् नृत्य के विशेष संदर्भ में

भारत अपनी संस्कृति, सभ्यता और सांस्कृतिक परम्पराओं के लिये सम्पूर्ण विश्व में विख्यात है। हमारा देश कलाओं की खान है। शास्त्रीय व लोक कलाएँ हमें पीढ़ी दर पीढ़ी विरासत में धरोहर के रूप में मिली हैं। सभी देशों में संगीत व ताल की पद्धतियाँ पाई जाती हैं पर हमारा देश एकमात्र ऐसा देश है जहाँ एक नहीं बल्कि दो प्रकार की संगीत व ताल पद्धतियाँ पाई जाती हैं। यह विश्व की सांस्कृतिक धरोहर में भारत का एक महत्वपूर्ण योगदान है।

यह दो पद्धतियाँ हैं – हिन्दुस्तानी अथवा उत्तर भारतीय संगीत तथा ताल पद्धति व कर्नाटिक अथवा दक्षिण भारतीय संगीत तथा ताल पद्धति। ये दोनों ही पद्धतियाँ अपने अपने स्थान पर अत्यन्त ही समृद्ध व सशक्त हैं तथा कई नृत्यों का आधार भी बनती हैं। हम सभी इस अवधारणा से अवगत हैं कि संगीत, ताल के बिना अधूरा है।

किन्तु हमें इसके पीछे का कारण जानना भी उतना ही आवश्यक है, जिसके लिये पहले हमें ताल व संगीत का अलग अलग ज्ञान प्राप्त करना होगा।

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।।

अर्थात् – गायन, वादन व नर्तन क्रियाएँ मिलकर संगीत बनाती हैं।

साधारणतया आज हम संगीत से केवल गायन कला समझते हैं, परन्तु प्राचीन शास्त्रों के अनुसार गायन, वादन व नर्तन तीनों ही क्रियाएँ मिलकर संगीत बनाती हैं। अतः सबसे पहले तो हमें इस बात को स्पष्ट रूप से समझना होगा कि संगीत में ताल के महत्व को दर्शाने का अर्थ इन तीनों कलाओं में ताल के महत्व को दर्शाना होता है। गायन, वादन, नर्तन कलाएँ न केवल आपस में जुड़ी हुई हैं वरन् अन्य ललित कलाओं से भी इनका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के बीसवें अध्याय में वर्णित एक कथा के अनुसार एक बार श्रीकृष्ण के प्रपौत्र राजा वज्र, ऋषि मार्कण्डेय से कलियुग में ईश्वर की आराधना करने का सबसे सरल मार्ग पूछते हैं। तब ऋषि मार्कण्डेय उन्हें प्रतिमा पूजन द्वारा ईश्वराराधना करने का मार्ग बताते हैं और राजा वज्र उनसे प्रतिमा लक्षण अर्थात् प्रतिमा बनाने की प्रक्रिया पूछते हैं। इसके लिये ऋषि उन्हें चित्रसूत्र विधान की आवश्यकता का वर्णन करते हैं जिसके लिये राजा को चित्रकला व मूर्तिकला सीखनी होती।

राजा वज्र जब उत्सुकता दिखाते हैं तब ऋषि मार्कण्डेय कहते हैं कि चित्रकला व मूर्तिकला सीखने के लिये सर्वप्रथम मानव शरीर को समझना होगा जिसके लिये पहले नृत्य सीखना होगा। नृत्य में ताल का सर्वाधिक महत्त्व होता है और ताल को जानने के लिये वाद्य वादन आना चाहिये और चूँकि वाद्य वादन में सुर व राग आवश्यक होते हैं अतः वादन के पहले गायन कला में पारंगत होना आवश्यक है। गीत में शब्दों की आवश्यकता होती है अतः सबसे पहले व्याकरण व भाषा का ज्ञान प्राप्त करना उचित होंगा।

इस प्रकार इस कथा के माध्यम से हम यह देख सकते हैं कि ये सभी कलाएँ भिन्न होते हुए भी पारस्परिक रूप से जुड़ी हुई हैं और इन सभी कलाओं में से गायन, वादन व नर्तन क्रियाएँ मुख्य रूप से ताल पर ही निर्धारित होती हैं। कुछ क्रियाएँ ऐसी भी हैं जो ताल के बिना प्रस्तुत की जा सकती हैं पर लगभग सभी क्रियाएँ ताल पर ही केन्द्रित होती हैं।

कुछ विद्वानों के मतानुसार तालहीन संगीत, अनिबद्ध अथवा अरण्यक संगीत अर्थात् तालविहीन अथवा वन का संगीत कहलाता है तथा तालमय संगीत, निबद्ध अथवा नगरीय संगीत अर्थात् तालपूर्ण अथवा नगर का संगीत कहलाता है। कुछ का यह भी मानना है कि तालहीन संगीत रोचक नहीं उबाऊ होता है परन्तु यह असत्य है। कहा यह जा सकता है कि तालविहीन संगीत की अपेक्षा तालमय संगीत अधिक रोचक व समझने में सरल होता है तथा जन साधारण को अधिक सरलता से अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

हमारा समाज संगीत के बिना अधूरा है। कई सामाजिक, धार्मिक व मनोरंजक गतिविधियों एवं समारोहों में संगीत की आवश्यकता होती है। ईश्वर की वंदना संगीत द्वारा होती है, किसी ईश्वरीय प्रतिमा की यात्रा जैसे भगवान जगन्नाथ

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

की रथयात्रा आदि के आयोजन के समय भी सबसे पहले सदा ही विभिन्न वाद्ययंत्र बजाये जाते हैं।

प्रसन्नता, दुखादि भावों को दर्शाने के लिये भी संगीत का ही प्रयोग किया जाता है, मनोरंजन के लिये भी संगीत का सहारा लिया जाता है और विचलित मन को शान्त करने में भी सुमधुर संगीत सबसे अधिक सहायता करता है।

यहाँ तक कि प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक सर जगदीश चन्द्र बोस के प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है कि सौम्य संगीत पेड़पौधों को भी शीघ्र बढ़ने में सहायता करता है। अतः सरलता से कहा जा सकता है कि मानव जीवन का कोई भी ऐसा कार्य नहीं है जो संगीतमय व तालमय न हो। कई ग्रन्थों में संगीत की तीनों क्रियाओं को तौर्यत्रिक नाम से सम्बोधित किया है।

दामोदरम् द्वारा रचित ग्रन्थ संगीतदर्पण के तालाध्याय में गायन, वादन व नर्तन क्रियाओं को उन्मत्त हाथी के समान और ताल को उसे संयमित करने वाले अंकुश के रूप में वर्णित किया गया है।

तौर्यत्रिकं च मत्तेभस्तालस्तयांकुशं विदुः।।

ताल शब्द का आधार है संस्कृत शब्द 'तल' जिसका अर्थ है स्थिर होना। अतः ताल का अर्थ है वह साधन अथवा विधि जिसके द्वारा गायन, वादन व नर्तन क्रियाओं को स्थिर रूप से मापा जा सके अथवा इन क्रियाओं को स्थिरता प्रदान की जा सके। यह भी माना जाता है कि ताल शब्द 'करतल' अर्थात् हथेली से भी बना है क्योंकि प्राचीन समय से लेकर आज तक भी ताल को मापने के लिये दोनों हाथों का ही प्रयोग होता है। एक और धारणा के अनुसार –

तकारः शंकरः प्रोक्तो लकारः पार्वती स्मृताः।
शिव शक्ति समायोगात् तालमित्यभिधीयते।।[1,2]

अर्थात् – शिव नृत्य ताण्डव के 'त' तथा पार्वती नृत्य लास्य के 'ल' से शिव शक्ति के संगम स्वरूप में ताल का निर्माण हुआ है।

चूँकि ताल संगीत का अभिन्न अंग है अतः लगभग सभी प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख व वर्णन प्राप्त होता है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र, दत्तिल का दत्तिलम्, नारद मुनि का संगीत मकरन्द, शारंगदेव का संगीत रत्नाकर, गोविन्द

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दीक्षितर की संगीत सुधा, राजा तुलजा का संगीत शालामृत आदि ऐसे ही कई ग्रन्थ विस्तृत रूप से ताल की चर्चा करते हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ जैसे तालविधान, तालविषय, तालदीपिका, तालसमुद्र, ताललक्षण संग्रह आदि ऐसे ही कई ग्रन्थ पूर्णतया ताल के महत्वपूर्ण विषय पर ही केन्द्रित हैं। नाट्यशास्त्र में घनवाद्य को तालवाद्य कहा गया है और घनवाद्य बजाने वाला व्यक्ति ही ताल को संचालित करता है वाद्यवृन्द के अन्य वाद्यों का स्वतन्त्र रूप से वादन किया जा सकता है।

इस धारणा के विपरीत आज हम अवनद्ध वाद्यों को मुख्य व घनवाद्यों को सहयोगी तालवाद्य मानते हैं। भरत के मतानुसार –

वाद्यं तु यद् घनं प्रोक्तं कलापातलयान्वितम्।
कलास्तस्य प्रमाणं हि विज्ञेयं तालयोगतः।।1।।[3]

अर्थात् – घनवाद्य को ताल कहा गया है जो कलापात विभागों तथा लयादि से युक्त होता है।

केवल संगीत की क्रियाओं में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण सृष्टि की क्रियाओं में ताल पाया जाता है। धरती का सूर्य की निरन्तर परिक्रमा करना, समुद्र में लहरों का उतार चढ़ाव, चन्द्रमा का घटना बढ़ना तथा धरती के चारों ओर उसकी परिक्रमा, सभी एक निर्धारित क्रम में होता है। यह निर्धारित क्रम सृष्टि का आधार स्वरूप ताल है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड प्रकृति के इन्हीं नियमों का पालन करता है।

यहाँ तक कि सैन्य प्रशिक्षण में भी सभी सैनिकों को एकसाथ मिलकर काम करने अथवा एकरूप हो युद्ध करना सिखाने के लिये तथा कदम से कदम मिला कर चलने के लिये भी कुछ निर्धारित समय सीमाओं, कुछ निर्धारित क्रमों और नगाड़े या ढोल की ध्वनि का प्रयोग किया जाता है जो ताल का ही एक स्वरूप है। स्पष्ट रूप से कहें तो मानव जीवन प्रत्यक्ष रूप से संगीत तथा अप्रत्यक्ष रूप से ताल को अत्यधिक महत्व देता है।

समय के महत्व को सभी जानते हैं। दैनिक जीवन में जिस प्रकार घड़ी से सही समय जान कर हम अपनी दिनचर्या निर्धारित करते हैं उसी प्रकार ताल को जानकर हम गायन, वादन व नर्तन की विभिन्न क्रियाओं को निर्धारित करते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नृत्य संरचना तो ताल के बिना हो ही नहीं सकती, तालहीन नृत्य यदि सृजित हो भी गया तो देखने में प्रायः नीरस ही लगेगा।

यदि हमें यह नहीं पता होगा कि संरचना का आकार क्या होगा तो हम कोई भी रचना किस प्रकार कर पायेंगे? नृत्य में इसी सीमा के निर्धारण का कार्य ताल करता है।

मानव शरीर के समान ही ताल को बनाने के लिये कुछ अंगों की आवश्यकता होती है। उत्तर भारतीय व दक्षिण भारतीय दोनों ही ताल पद्धतियों में प्राचीन काल में छः अंगों का प्रयोग होता था जो हैं – अनुद्रुतम्, द्रुतम्, लघु, गुरु, प्लुत एवं काकपाद। किन्तु आज मुख्य रूप से तीन अंग ही प्रचलित हैं। ये हैं – लघु, (चिह्न– I), द्रुतम् (चिह्न – 0), अनुद्रुतम् (चिह्न– U)।

इन अंगों की सहायता से ताल का एक साधारण प्रारूप तैयार किया जाता है, जिसे पुनः जाति की सहायता से सुदृढ़ किया जाता है। जाति का कार्य है किसी भी ताल को एक विशिष्ट पहचान देना। जातियाँ पाँच प्रकार की हैं (तिश्र 3 मात्रा, चतुरश्र 4 मात्रा, खण्ड 5 मात्रा, मिश्र 7 मात्रा, संकीर्ण 9 मात्रा) इन पाँच प्रकार की जातियों का प्रयोग ताल के केवल लघु अंग में होता है।

जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों का भार भी भिन्न होता है उसी के समान ताल के विभिन्न अंगों का भी भिन्न भिन्न भार होता है, जिसे ताल की तकनीकी परिभाषा में मात्रा (गिनती) कहते हैं। इस प्रकार, द्रुतम् सदा 2 मात्राओं का व अनुद्रुतम् सदा 1 मात्रा का होता है। परन्तु लघु, जाति की मात्राओं के अनुसार परिवर्तित होता रहता है और मात्राओं के इसी सूक्ष्म परिवर्तन के कारण एक ताल दूसरे ताल से भिन्न हो जाता है।

उत्तर भारतीय ताल पद्धति में तालों की संख्या निर्धारित नहीं है, विभिन्न विद्वान तालों की भिन्न–भिन्न संख्याएँ बताते हैं। परन्तु भरतनाट्यम् नृत्य में प्रयुक्त दक्षिण भारतीय ताल पद्धति में प्रमुख सात ताल होते हैं जिन्हें शूलादि सप्त ताल कहते हैं। इनको प्रचलित करने का कार्य सबसे पहले संगीत पितामह श्री पुरन्दर दास ने किया था जब उन्होंने दक्षिण भारतीय संगीत व ताल पद्धति को एक नया स्वरूप व एक नया आयाम दिया।

इन सप्त तालों को हमें परम्परा से पीढ़ी दर पीढ़ी हमारे गुरुजनों द्वारा एक श्लोक के माध्यम से सिखाया जाता है –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ध्रुवो मठ्यो रूपकश्च झम्प त्रिपुट एव च।
अटतालैकतालौ च सप्तताला प्रकीर्तिता।।

1. ध्रुवताल (चिह्न – I0II)
2. मठ्यताल (चिह्न – I0I)
3. रूपकताल (चिह्न – 0I)
4. झम्पताल (चिह्न – IU0)
5. त्रिपुटताल (चिह्न – I00)
6. अटताल (चिह्न – II00)
7. एकताल (चिह्न – I)

इन सात तालों में जब पाँच प्रकार की जातियों को मिलाया जाता है तब दक्षिण भारतीय ताल पद्धति के 35 (7X5) प्रकार के ताल प्राप्त किये जाते हैं। ताल को और अधिक पुष्ट करने के लिये जाति के साथ ही गति भेदों का भी प्रयोग किया जाता है। ताल की एक मात्रा से दूसरी मात्रा के मध्य का अन्तर गति कहलाता है।

ये गतियाँ भी पाँच प्रकार की होती हैं – (तिश्र 3 मात्रा, चतुरश्र 4 मात्रा, खण्ड 5 मात्रा, मिश्र 7 मात्रा, संकीर्ण 9 मात्रा)। जाति के विपरीत गति का प्रयोग ताल के प्रत्येक अंग की हरेक मात्रा के मध्य का अन्तर बताने के लिये किया जाता है।

सरल भाषा में यदि कहें तो जिस प्रकार 1 घंटे में 60 मिनिट तथा प्रत्येक मिनिट में 60 सेकेन्ड होते हैं उसी प्रकार ताल के एक पूरे प्रारूप की कुछ मुख्य मात्राएँ तथा उन प्रत्येक मात्राओं में भी स्थित सूक्ष्म मात्राएँ होती हैं और इन्हीं से एक सम्पूर्ण सुदृढ़ ताल का स्वरूप बनता है। जाति के साथ मिलाकर बनाये गये 35 तालों की संरचना में जब ये गतियाँ जुड़ती हैं तब हमें दक्षिण भारतीय ताल पद्धति के 175 ताल प्राप्त होते हैं।

इन सभी 175 तालों को बनाने का प्रारूप एक सा ही होता है। वैसे तो सभी जातियों और गतियों का प्रयोग किया जाता है किन्तु मुख्य रूप से प्रायः चतुरश्र जाति व गति का ही प्रयोग किया जाता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उदाहरण के स्वरूप में यहाँ चतुरश्र जाति चतुरश्र गति त्रिपुट ताल का निर्धारित प्रारूप निम्नानुसार प्रस्तुत है –

$I_4 0_2 0_2$ – अर्थात् चतुरश्र जाति के अनुसार लघु की 4 मात्राएँ तथा द्रुतम् की निर्धारित 2–2 मात्राओं को जोड़ने से ताल की मुख्य मात्राएँ 8 (4+2+2) होती हैं। जब इन प्रत्येक 8 मात्राओं में चतुरश्र गति की 4 मात्राओं को भी मिलाया जाता है, तब कुल 32 (4 X 8) मात्राएँ पाप्त होती हैं।

इस तरह यदि हमें ताल की महत्त्वपूर्ण और सूक्ष्म मात्राओं का ज्ञान हो जाये तब उस निर्धारित समय सीमा में किसी भी प्रकार की नृत्य संरचना करना बहुत ही सरल हो जाता है। इस प्रारूप. के आधार पर हम नृत्य की लय अर्थात् गति को बढ़ा या घटा सकते हैं बस इतना ध्यान रखना आवश्यक होता है कि ताल कि मात्राओं की संख्या उतनी ही रहेंगी।

यदि यह प्रारूप हमारे पास न हो तो नृत्य रचना करना अन्धेरे में बाण चलाने जैसी बात हो जायेगी यह न जानते हुए कि बाण अपने लक्ष्य पर पहुँचेगा भी कि नहीं। भरतनाट्यम् नृत्य में सदा ही इसी प्रारूप को आधार बनाकर नृत्य रचनाएँ की जाती हैं। इसका एक उदाहरण इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है –

भरतनाट्यम् नृत्य की मूलभूत ईकाइयाँ अडवु कहलाती हैं जिन्हें तीन लयों, विलम्बित अर्थात् सबसे धीमी गति, मध्य अर्थात् मध्यम गति (विलम्बित का दुगुना) और द्रुत अर्थात् तीव्रतम् गति (मध्य का दुगुना) में प्रस्तुत किया जाता है। अडवु की सबसे पहली इकाई तट्ट अडवु है जिसके आठ प्रकार हैं और सबसे पहले तट्ट अडवु के बोल हैं तैया तई।

यह अडवु सामान्य रूप में आदि ताल के नाम से प्रचलित ताल, अर्थात् चतुरश्र जाति चतुरश्र गति त्रिपुट ताल के प्रारूप के अनुसार रचा गया है। इसे यदि हम ताल प्रारूप के अनुसारताललिपि में लिखेंगे तो उसका स्वरूप कुछ इस प्रकार का होगा –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नृत्य की लय	1 त	2 क	3 दि	4 मि	5 त	6 क	7 दि	8 मि
विलम्बित लय	तैया	तई	तैया	तई	तैया	तई	तैया	तई
मध्य लय	तैया तई	तैया तई	तैया तई	तैया तई	तैया तई	तैया तई	तैया तई	तैया तई
द्रुत लय	तैया तई तैया तई	तैया तई तैया तई	तैया तई तैया तई	तैया तई तैया तई	तैया तई तैया तई	तैया तई तैया तई	तैया तई तैया तई	तैया तई तैया तई

इन ताल प्रारूपों के आधार पर किसी भी नृत्य रचना को लिखना उसे लिपिबद्ध करना कहलाता है। यहाँ, हम देखते हैं कि 8 मात्राओं के अनुसार हम आठ खण्ड बनाते हैं और चतुरश्र गति के अनुसार प्रत्येक खण्ड में 4 मात्राएँ निर्धारित रूप से रखते हैं। अतः विलम्बित में प्रत्येक खण्ड में एक शब्द स्थित है जिसे तैऽयाऽ (4 मात्रा) अर्थात् दीर्घस्वर के साथ बोला जाता है। मध्य में दो शब्द हैं तैया तई जो पुनः 4 मात्राएँ बनाते हैं। द्रुत में चार शब्द तैया तई तैया तई हैं जिन्हें इतनी तीव्रता के साथ बोला जाता है कि ये पुनः 4 मात्राएँ ही बनाते हैं।

यदि इस प्रारूप को अंकों की सहायता से समझा जाये तो यह कुछ इस प्रकार होगा –

नृत्य की लय	1 त	2 क	3 दि	4 मि	5 त	6 क	7 दि	8 मि
विलम्बित लय	1	2	3	4	5	6	7	8
मध्य लय	1 2	3 4	5 6	7 8	1 2	3 4	5 6	7 8
द्रुत लय	1 2 3 4	5 6 7 8	1 2 3 4	5 6 7 8	1 2 3 4	5 6 7 8	1 2 3 4	5 6 7 8

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रारूप के अनुसार प्रत्येक विलम्बित लय के खण्ड में 1 शब्द अथवा 1 अक्षर, प्रत्येक मध्य लय के खण्ड में 2 शब्द अथवा 2 अक्षर एवं प्रत्येक द्रुत लय के खण्ड में 4 शब्द अथवा 4 अक्षर होने चाहिये।

ताल का यही प्रारूप भरतनाट्यम् की सरल से सरल व जटिल से जटिल नृत्य रचनाओं को करने के लिये एवं उन्हें लिख कर लिपिबद्ध करने के लिये प्रयोग में लाया जाता है। इन्हीं के आधार पर भिन्न भिन्न अडवुओं को मिलाकर नृत्य रचनाएँ की जाती हैं जिनमें अडवु के बोलों अथवा मृदंगम् के बोलों को बोला जाता है।

ये अडवु के समूह जति, तीर्मानम् व कोरवै कहलाते हैं और इनमें लय कभी भी पतिरवर्तित हो जाती है। ऊपर वर्णित इसी चतुरश्र जाति चतुरश्र गति त्रिपुट ताल अथवा आदि ताल में रचा हुआ एक कोरवै का जटिल प्रारूप इस प्रकार है –

1 त	2 क	3 दि	4 मि	5 त	6 क	7 दि	8 मि
तै युम् तत् तत्	तै युम् ता हा	तै युम् तत् तत्	तै युम् ता हा	तै युम् तत् तत्	तै युम् ता हा	तै युम् तत् तत्	तै युम् ता हा
तकदिमि	तकदिमि	तकदिमि	तकदिमि	तकदिमि	तकदिमि	तकदिमि	तकदिमि
धित् धित् तई –	धित् धित् तई –	धित् धित् तई –	धित् धित् तई –	तकदिमि	तै धित्धित् तई –	– तै धित्धित् तई	– तै धित्धित् तई

नृत्य लिपिबद्ध करते समय यदि हम (–) समास अथवा (,) अर्धविराम चिह्न का प्रयोग करते हैं तो इसका तात्पर्य यह होता है कि शब्दों में विराम आया है किन्तु ताल की गणना उसी प्रकार चलती रहती है। ताल की गणना करते समय इन समास अथवा अर्धविराम (– एवं ,) के चिह्नों को भी एक शब्द अथवा अक्षर के रूप में गिना जाता है। तकनीकी भाषा में नृत्य अथवा काललिपि अथवा शब्दों में आये इस विराम को कारवै कहते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इस प्रकार से सभी नृत्य रचनाएँ सृजित करताललिपि में लिखी जाती हैं। केवल लिखने मात्र से यह कार्य पूर्ण नहीं होता वरन् इसे समझ कर इन शब्दों को स्मरण कर हाथों से ताल डालते हुए सफलता से उच्चारित करना भी आना चाहिये। इस प्रारूप से हमें इसी कार्य में सरलता प्राप्त होती है।

अतः नृत्य करने वाले की ताल की समझ सटीक होनी चाहिये जिससे कि वह क्लिष्ट रचनाओं को भी सुगमता से कलात्मक रूप से नवीनता के साथ सृजित कर बिना कठिनाई के प्रस्तुत कर सके। यदि ताल और उसके आधार पर नृत्य रचना सक्षम रूप से प्रस्तुत न की जाये तो न केवल उपस्थित दर्शकों को आनन्द नहीं आता वरन् ताल का अनुचित प्रयोग दर्शकों में उपस्थित तालविज्ञ शुधि दर्शकों व श्रोताओं को विचलित ही कर देता है। किसी भी कार्यक्रम की प्रस्तुति में ताल इसी प्रकार से महत्वपूर्ण योगदान देता है।

सन्दर्भ :

1. Sangeet Ratnakar Vaadyaadhyay; Translation by Subhadra Chaudhari; Radha Publications (2009)
2. Kathak Nritya Shiksha Part 2; Dr. Puru Dadhich; Bindu Prakashan (2009)
3. Natyashastra of Bharatamuni- Vol-IV, Chapter-31; Editor-Dr. K. Krishnamurti, Oriental Institute, Vadodara (1992).

HOMBALE

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

पूर्वरंग – संस्कृत नाटकों का एक लुप्त व पुनर्निमित अंग

(स्व. डॉ. प्रेमलता शर्मा का एक प्रयास)

पुरातन युग का प्राचीन भारत अराजकता से भर चुका था। मनुष्य सत्य असत्य, उचित अनुचित को भूलकर अधर्म के मार्ग पर चलने लगे थे। वैदिक क्रियाएँ, यज्ञ, दान, दया और ईश्वर भक्ति अर्थहीन हो गई थी। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, लोभादि के भाव मानव हृदय को इतना संकुचित कर चुके थे कि प्रेम, आनन्द, सहृदयता लुप्त हो चली थीं। दान और दया जैसे भावों से दूर हो चुके सभी मनुष्यों को केवल किसी न किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा रहती थी फिर चाहे कोई भी मूल्य क्यों न चुकाना पड़े।

युद्ध एक ऐसी सामान्य घटना बन चुका था कि सभी मानवता से परे एक अन्धकार से भरे साये में रहने लगे थे। मनुष्य मानवता भूल गये थे जिस कारण अब दुःख और शोक ही सबसे महत्वपूर्ण भाव रह गये थे। इससे देवों की चिन्ता बढ़ गई। उन्हें भय लगने लगा कि परमपिता ब्रह्मा द्वारा निर्मित जीवन की यह अमूल्य रचना कहीं लुप्त न हो जाये और पृथ्वी कहीं पुनः वीरान न हो जाये। उन्हें यह भी भय लगने लगा कि कहीं मनुष्य उन्हें भी न भूल जाये, वे यह न भूल जाये कि प्रकृति में देवता भी हैं जो मनुष्यों के दैनिक जीवन में उनकी रक्षा करते थे, ऐसे देव जिन्हें मनुष्यों के पूजन द्वारा शक्ति प्राप्त होती थी।

अतः देवताओं ने मनुष्यों को पुनः धर्म के सही मार्ग पर लाने और मानवता का महत्व समझाने का निर्णय किया। किन्तु वे जानते थे कि मनुष्य को क्रोध से डरा धमका कर सही मार्ग पर नहीं लाया जा सकता और इसीलिये उन्होंने सोचा कि इन बुरे विचारों से मनुष्य को दूर करने के लिये किसी प्रकार के परिवर्तन की आवश्यकता है जो न केवल उनका मनोरंजन करे वरन् उन्हें नैतिकता का पाठ भी पढ़ाये।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

इसी विचार के साथ देवेन्द्र और अन्य सभी देव परमपिता ब्रह्मा के पास गये। उन्होंने परमपिता ब्रह्मा से एक ऐसा क्रीडानीयकम् अर्थात् मनोरंजन का साधन बनाने का निवेदन किया जो दृश्य व श्रव्य दोनों हो, जिसे स्त्री पुरुष, ब्राह्मण–क्षूद्र–क्षत्रिय सभी जान, समझ और पढ़ सकें और जो उनका ज्ञानवर्धन भी कर सके। उनकी सहायता की यह प्रार्थना सुन कर परमपिता ब्रह्मा ध्यानमग्न हो गये और ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद को एकत्रित किया तथा इन वेदों के सार को संग्रहित कर उन्होंने पंचम वेद के रूप में नाट्यवेद का निर्माण किया।

देवेन्द्र के आग्रहानुसार यह नाट्यवेद भरत मुनि को समझने और अपने सौ पुत्रों व शिष्यों सहित प्रयोग करने हेतु प्रदान किया गया। ब्रह्मदेव ने सौम्य और लालित्यपूर्ण भावों की प्रस्तुति हेतु 24 अप्सराओं का निर्माण भी किया और गायन व वादन में भरत मुनि का सहयोग करने का कार्य स्वाति मुनि, नारद मुनि व गन्धर्वों को सौंपा। इस प्रकार से इन्द्र के ध्वज महोत्सव में सबसे पहले नाट्य का मंचन सम्भव हुआ। प्रस्तुति के मध्य में कथानक के विरोध में दैत्यों द्वारा मचाये उत्पात को पितामह ब्रह्मा ने शान्त कराते हुए दैत्यों को समझाया कि नाट्यवेद सभी वर्गों के लोगों के लिये है केवल देवों के लिये नहीं और यह सभी जनों के अच्छे और बुरे कर्मों का प्रदर्शन करता है, चाहे वे मानव हों, देव हों अथवा दैत्य हों।

तत्पश्चात् देवशिल्पी विश्वकर्मा ने ब्रह्मदेव की आज्ञानुसार एक नाट्यमण्डप का निर्माण किया और सभी देवी देवताओं को हर दिशा में एक–एक स्थान निर्धारित कर इस नाट्यमण्डप की रक्षा का कार्यभार सौंपा गया। तब पुनः नाट्य का मंचन प्रारम्भ हुआ किन्तु इस बार एक महत्वपूर्ण परिवर्तन के साथ। नटराज भगवान शंकर ने पहला नाट्य मंचन देखा था और पाया कि उसे और अधिक सौन्दर्यपूर्ण बनाने के लिये किसी विशेष तत्त्व की आवश्यकता थी।

अतः उन्होंने भरत मुनि को बुलाकर उन्हें नाट्य के प्रारम्भिक अंश में नृत्य का प्रयोग करने के लिये कहा जिसमें अभी तक केवल सरल गीत ही थे। उन्होंने कहा "करणों, अंगहारों, चारि और रेचकों सहित मेरे द्वारा निर्मित शुद्ध नृत्त का प्रयोग न केवल नाट्य के प्रारम्भिक गीतों के अर्थ को समझाने में सहायता प्रदान करेगा वरन् सम्पूर्ण नाट्य प्रस्तुति को और अधिक सौन्दर्यपूर्ण भी बनायेगा।"

भरतमुनि ने सहर्ष नटराज शंकर की बात स्वीकार की और शिव के प्रमुख गण तण्डु मुनि ने उन्हें इस शिव नृत्त की शिक्षा प्रदान की। इसी कारण यह नृत्त

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ताण्डव के नाम से जगप्रसिद्ध हुआ। देवी पार्वती ने भी अपने द्वारा निर्मित सौम्य व सुकुमार प्रस्तुतियों के लिये उपयुक्त नृत्त, लास्य की शिक्षा भरतमुनि को प्रदान की।

नाट्य का यह प्रारम्भिक अंश, जिसमें अब नृत्त का समावेश किया गया, पूर्वरंग के नाम से जाना जाता था।

प्रारम्भ में इसमें केवल गीत थे जिनका अर्थ समझना कठिन था किन्तु शिव पार्वती के नृत्त के सम्मिश्रण के साथ पूर्वरंग का स्वरूप ही बदल गया और यह न केवल और अधिक सुन्दर हो गया वरन् पूर्वरंग के गीतों में वर्णित कठिन अर्थों को तथा नाट्य को भी सरलता से दर्शकों तक पहुँचाने लगा।

कहा जा सकता है कि यह नृत्य का प्रारम्भिक स्वरूप था जहाँ से चलते हुए आज हमें यह विभिन्न रूपों में प्राप्त होता है। धरती पर आने के पश्चात् यह नृत्य स्वतन्त्र रूप से भी प्रचलित हुआ।

नाट्यशास्त्र की टीका करते हुए आचार्य अभिनव गुप्त, शिव का वन्दन करते हुए कहते हैं कि यदि नाट्य संसार रूपी है तो आराध्य शिव, आकाश के रूप में उसके अधिष्ठाता बन विराजमान हैं –

संसारनाट्यनिर्माणे याऽवकाशविधानतः।
पूर्वरंगायते व्योममूर्तिं तां शांकरीं नुमः।।[1]

अर्थात् – हम उस भगवान शिव को नमन करते हैं जो नाट्य में पूर्वरंग के रूप में उसी प्रकार प्रतिष्ठित हैं जिस प्रकार संसार में आकाश प्रतिष्ठा के साथ विद्यमान है।

भरतमुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र के अनुसार पूर्वरंग के अन्तर्गत वे सभी प्रकार की विधियाँ व क्रियाएँ आती हैं जिन्हें मुख्य नाटक की प्रस्तुति से पहले किया जाना आवश्यक है। इनमें से कुछ विधियाँ यवनिका अर्थात् पर्दे के पीछे की जाती हैं और कुछ मंच पर दर्शकों के समक्ष ही प्रस्तुत होती हैं। इस प्रकार से पूर्वरंग की विधियों को दो भागों में विभाजित किया जाता है –

अन्तर्यवनिका, अर्थात् पर्दे के पीछे की जाने वाली विधियाँ नौ प्रकार की हैं :–

प्रत्याहारोऽवतरणं तथा ह्यारम्भ एव च।
आश्रावणा वक्त्रपाणिस्तथा च परिघट्टना।।9।।
संघोटना ततः कार्या मार्गासारितमेव च।
जेष्ठमध्यकनिष्ठानि तथैवासारितानि च।।10।।
एतानि तु बहिर्गीतान्यन्तर्जवनिकागतैः।।[2]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

1. प्रत्याहार – कुतप अर्थात् वाद्यों का वितरण और वाद्यवृन्दों का उचित स्थान निर्धारण।
2. अवतरण – स्त्री व पुरुष गायक तथा अन्य संगीतज्ञों का मंच पर उचित आसन ग्रहण करना।
3. आरम्भ – विभिन्न स्वर आलापों के अभ्यास द्वारा कण्ठ को परिगीत अर्थात् गाने हेतु तैयार करना।
4. आश्रावणा – वादन से पूर्व सभी वाद्य यन्त्रों को श्रुतिबद्ध करना।
5. वक्त्रपाणी – वाद्यों को बजाने की विभिन्न शैलियों (वृत्ति) का अभ्यास।
6. परिघट्टना – जो संगीत प्रस्तुत होने जा रहा है उसके अनुरूप ततवाद्यों को एक श्रुति में मिलाना।
7. संघोटना – ताल दर्शाने हेतु प्रयुक्त विभिन्न हस्त क्रियाओं का अभ्यास करना।
8. मार्गासारित – अवनद्ध व ततवाद्यों को एक साथ बजा कर उनकी श्रुति जाँचना।
9. आसारित – कलाओं के विभागों अर्थात् कलाभागों का अभ्यास।

बहिर्यवनिका, अर्थात् पर्दे के सामने की जाने वाली विधियाँ दस प्रकार की हैं :–

प्रयोक्तृभिः प्रयोज्यानि तन्त्रीभाण्डकृतानि तु।।11।।
ततः सर्वैस्तु कुतपैः संयुक्तानीह कारयेत्।
विघाट्य वै जवनिकां नृत्तपाठ्यकृतानि तु।।12।।
गीतानां मद्रकादीनां योज्यमेकं च गीतकम्।
वर्धमानमथापीह ताण्डवं यत्र युज्यते।।13।।
ततश्चोत्थापनं कार्यं परिवर्तनमेव च।
नान्दी शुष्कावकृष्टा च रंगद्वारं तथैव च।।14।।
चारी चैव ततः कार्या महाचारी तथैव च।
त्रिकं प्ररोचना चापि पूर्वरंगे भवन्ति हि।।15।।[3]

1. गीतक – ईश्वर का गुणगान करते प्रार्थना रूपी गीतों का प्रस्तुतिकरण।
2. उत्थापन – कुछ विद्वान इसे नाटक का प्रारम्भ मानते हैं क्योंकि यह नाट्य के आधार का कार्य करता है। इसके मांगलिक गीत में नाटक की कथा का अंश समाहित होता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

3. **परिवर्तन** – परिवर्तन के अर्न्तगत सूत्रधार नृत्यात्मक क्रियाएँ करते हुए मंच पर चारों ओर घूमता है अर्थात् परिक्रमा करता है और रंगमंडप के रक्षक देवी देवताओं का आवाहन कर उनकी वन्दना प्रस्तुत करता है।
4. **नान्दी** – इसके अन्तर्गत देवों, ब्राह्मणों व राजाओं का गुणगान व स्तुति की जाती है।
5. **शुष्कावकृष्ट** – ध्रुवा शुष्काक्षर अर्थात् अर्थहीन किन्तु कलात्मक रूप से सजे कुछ शब्दों का गान जो जर्जर श्लोक की प्रस्तुति के प्रारम्भ की सूचना देता है।
6. **रंगद्वार** – पूर्वरंग के इस अंश के साथ ही वाचिक और पूर्ण आंगिक अभिनय का प्रारम्भ हो जाता है अतएव इस अंश को रंगद्वार कहते हैं।
7. **चारी** – सूत्रधार द्वारा शृंगार रस से पूर्ण आंगिक क्रियाओं का प्रदर्शन।
8. **महाचारी** –सूत्रधार द्वारा रौद्र रस से पूर्ण आंगिक क्रियाओं का प्रदर्शन।
9. **त्रिगत अथवा त्रिक्** – सूत्रधार का पारिपार्श्विक व विदूषक के साथ वार्तालाप जिसमें सांकेतिक रूप से नाटक की भूमिका बाँधी जाती है।
10. **प्ररोचना** – उचित तथ्यों व कारणों के साथ नाटक की कथावस्तु के वर्णन के पश्चात् सूत्रधार का दर्शकों को नाट्य प्रस्तुति देखने का निमन्त्रण।

यदि भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में वर्णित नियमों का पलन किया जाये तो यह सभी प्रारम्भिक क्रियाएँ किसी भी संस्कृत नाटक की प्रस्तुति के पूर्व में अनिवार्य रूप से की जानी चाहिये क्योंकि इनसे नाट्यकारों का मंगल सिद्ध होता है। कई शतियों तक इस नियम का पूर्णतः पालन किया गया किन्तु समय के साथ संस्कृत नाटकों का मंचन धीरे धीरे लुप्तप्राय हो चला और जब कभी यदा कदा संस्कृत नाट्य मंचन होता तब भी सौन्दर्य से बने उसके प्रारम्भिक भाग पूर्वरंग को प्रायः प्रस्तुत नहीं किया जाता।

इस प्रकार समय के साथ पूर्वरंग अविस्मरणीय अतीत का अंश बन गया।

कुछ नाट्यकारों ने इस भूले हुए अंश को प्रस्तुत भी किया किन्तु उचित विधि का ज्ञान न होने के कारण प्रायः त्रिगत (तीन पुरुषों, सूत्रधार, विदूषक व पारिपाश्र्वक की वार्ता) के साथ नृत्य कार्यक्रमों में प्रदर्शित की जाने वाली संस्कृत श्लोकों के साथ प्रस्तुत पुष्पांजलि को ही पूर्वरंग के रूप में प्रस्तुत किया गया और धीरे धीरे सभी इसी पुष्पांजलि को ही पूर्वरंग समझने लगे।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तर्यवनिका की छिपी हुई क्रियाएँ भी जैसे वाद्यों को स्वरबद्ध करना आदि भी मंच पर दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत की जाने लगीं। आज भी हम कई बार नाट्य व नृत्य कार्यक्रमों के प्रारम्भ में देखते हैं जब दर्शक अधीरता से प्रस्तुति के प्रारम्भ की प्रतिक्षा करते हैं और वाद्यवृन्द वाद्यों के स्वर मिलाने और रागों के प्रारम्भिक आलाप आदि लेने में ही व्यस्त रहते हैं, जबकि यह कार्य परदे के पीछे ही सम्पन्न हो जाना चाहिये। इस विलम्ब से प्रस्तुति के प्रति दर्शकों की रुचि में कमी आती है और यह प्रस्तुति की सफलता को क्षीण करता है।

नाट्यशास्त्र के पूर्वरंग भाग में ऐसे कार्यों को विघ्न मानते हुए उनका निषेध किया गया है और स्पष्ट कहा है कि कलाकार व वाद्यकारों को पूर्णतया सज्जित होकर ही मंच पर दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत होना चाहिये। तदापि, अशुद्धियों से यदि परे हटें तो अन्तर्यवनिका के अंश किसी न किसी रूप में प्रस्तुत होते ही रहे किन्तु बहिर्यवनिका के अंशों की प्रस्तुति तो लुप्तप्राय हो गयी थी।

ये तो महान विदुषी व संगीत शास्त्र की ज्ञाता डॉ. प्रेमलता शर्मा के अथक प्रयासों का फल है कि पूर्वरंग के बहिर्यवनिका अंग को एक नया जीवन प्राप्त हो सका और यह पुनः संस्कृत नाट्य प्रस्तुतियों का एक अंग बन गया। उन्होंने सूक्ष्म रूप से नाट्यशास्त्र व अन्य नाट्योपयोगी संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन किया, संस्कृत नाटकों को समझा और उन्हें आधार बना कर नाट्यशास्त्रीय नियमों का पालन करते हुए पूर्वरंग का पुनर्निर्माण करने का प्रयत्न किया।

इस प्रयत्न के अन्तर्गत उन्होंने कई शुष्काक्षर गान और गीतकों की रचना की जिनकी प्रस्तुति स्वरों और नृत्य रचनाओं द्वारा की जाती थी। शुष्काक्षर गान में अर्थहीन शब्दों का उच्चारण है, केवल उनकी ध्वनि मधुर प्रतीत होती है तथा गीतक प्रार्थना रूपी गायन है।

पूर्वरंग में प्रायः शुष्काक्षर गान और गीतकों के चार समूह होते हैं। प्रत्येक शुष्काक्षर गान के साथ एक एक नर्तकी मंच पर क्रमशः भृंगार, कलश, पुष्प व दीप लेकर प्रवेश करती है। सर्वप्रथम गीतक के शब्दों के अर्थ का भावाभिनय से परिपूर्ण नृत्य द्वारा प्रस्तुत किया जाता है तत्पश्चात् गीतक के उन्हीं शब्दों पर शुद्ध नृत्त प्रस्तुत किया जाता है।

जब प्रथम नर्तकी शुष्काक्षर गान और गीतक का एक समूह प्रस्तुत कर देती है तब द्वितीय नर्तकी शुष्काक्षर गान और गीतक के दूसरे समूह के साथ मंच पर प्रवेश करती है और दूसरे गीतक को भावाभिनय से परिपूर्ण नृत्य द्वारा प्रस्तुत

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

करती है तत्पश्चात् दोनों नर्तकियाँ एकसाथ दोनों ही गीतकों पर शुद्ध नृत्त प्रस्तुत करती हैं। यह क्रम चारों नर्तकियों द्वारा शुष्काक्षर गान व गीतक के चारों समूहों की प्रस्तुति समाप्त होने तक चलता है।

प्रत्येक नर्तकी के प्रवेश के साथ शुष्काक्षर गान में एक शब्द बढ़ जाता है और प्रस्तुत हो चुके सभी गीतक और नवीन गीतक को पुनः गाया जाता है जिस पर सर्वप्रथम नर्तकी एकल नृत्य तथा तत्पश्चात् मंच पर स्थित सभी नर्तकियाँ एकसाथ नृत्त प्रस्तुत करते हैं। नृत्य क्रियाओं के मध्य सुन्दर रूप से करण, अंगहारों और रेचकों का सुन्दर कलात्मक रूप से समावेश किया जाता है। गीतकों के समूहों के मध्य पिण्डीबन्धों का भी प्रयोग करते हैं।

गीतक का पहला छन्द 9 कला मात्राओं द्वारा निर्मित होना चाहिये जिसमें प्रत्येक कला मात्रा, 4 मात्राओं की हो। गीतक का अगला छन्द 8 कला मात्राओं का होना चाहिये जिसे दो बार गाया जाता है तथा इसके बाद पुनः प्रथम छन्द गाया जाता है। इस प्रकार छन्द की पंक्तियों की कला मात्राओं का प्रारूप 8–8–9 का होता है।

गीतक का तृतीय छन्द 16 कला मात्राओं का होता है और यहाँ 16–16–8–9 के प्रारूप का प्रयोग किया जाता है। गीतक का अन्तिम छन्द 32 कला मात्राओं का होता है और यहाँ 32–32–16–8–9 के प्रारूप का प्रयोग करते हैं।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि यह प्रारूप क्रमशः पीछे की ओर अथवा घटते क्रम की ओर जाता है अर्थात् नवीन छन्द के पश्चात् पहले के छन्द क्रमबद्ध रूप से गाये जाते हैं। प्रत्येक गीतक छन्द, गायन के मध्य में एक अधिक शब्द के साथ शुष्काक्षर गान गाया जाता है। पूर्वरंग में प्रस्तुति हेतु डॉ. प्रेमलता शर्मा द्वारा रचित एक शुष्काक्षर गान व गीतक इस प्रकार हैं[4] –

झंटुं जगतिय वलितक दिगिनिगि तितिचा –*(शुष्काक्षर गान)*

देवं वद्यं। मदनांग हरं। ललनार्ध धरं। चन्द्रार्ध धरं। शम्भुम्।। –*(गीतक 9 मात्राएँ)*

झंटुं जगतिय वलितक दिगिनिगि तितिझल तितिचा –*(शुष्काक्षर गान)*

घनघन सार। सहोदर सुंदर। शशिकर निकर। शरीरं।।

उत्फण फणिगण। वलय शिरोमणि। किरण विभिन्न। तमिस्रम।।–*(गीतक 8 मात्राएँ)*

देवं वद्यं। मदनांग हरं। ललनार्ध धरं। चन्द्रार्ध धरं। शम्भुम्।।

–*(प्रथम गीतक की पुनरावृत्ति)*

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

झंटुं जगतिय वलितक दिगिनिगि तितिझल कुचझल तितिचा —(शुष्काक्षर गान)
गौरी नयन विलोल विलोकन। जीवित मदनं कनक पिषंग।।
जटापरि सरगत गंगा धौत। कपोलं।।
चन्द्रापीड़ं। चन्द्रकमण्डित चारुनिचोलं।।
विषद कपोल तलप्रति बिम्बित।
कर्ण विभूषं गजमुख षण्मुख।।
बालक्रीड़ा। विकसित वदनम्।। —(गीतक 16 मात्राएँ)

घनघन सार। सहोदर सुंदर। शशिकर निकर। शरीरं।।
उत्फण फणिगण। वलय शिरोमणि। किरण विभिन्न। तमिस्रम।।
देवं वद्यं। मदनांग हरं। ललनार्ध धरं। चन्द्रार्ध धरं। शम्भुम्।।
—(प्रथम व द्वितीय गीतक की पुनरावृत्ति)

झंटुं जगतिय वलितक दिगिनिगि तितिझल कुचझल तितिझल तितिचा
—(शुष्काक्षर गान).

सततं सनकादिक परिगीतं। गीताऽगम्यं।
गीत गुणं पारे सन्तिति नीरनिधिं।।
तृतया तीतं। त्रिजगद धीशं। त्रिगुणं द्विगुणं।
सगुणं सततं। विमलं विषदं। कलनातीतं। कलानिधिं।।
समद मदन मद दमन विभूषित। रति वरदान निदानं।।
गज वदनोदित भुजवन लीला। लालन हर्षित वदनं।।
ध्यानागम्यं। ध्येयं सततं। कमलासदनं। परमानंदं।।
व्योमकेशं। निर्जित मदनं। सुरनुत चरणं। भवभय हरणं।।
वन्दे। शान्तं। शुभदं। नित्यम्। — (गीतक 32 मात्राएँ)

गौरी नयन विलोल विलोकन। जीवित मदनं कनक पिषंग।।
जटापरि सरगत गंगा धौत। कपोलं।। चन्द्रापीड़ं। चन्द्रकमण्डित चारुनिचोलं।।
विषद कपोल तलप्रति बिम्बित। कर्ण विभूषं गजमुख षण्मुख।।
बालक्रीड़ा। विकसित वदनं।।
घनघन सार। सहोदर सुंदर। शशिकर निकर। शरीरं।।
उत्फण फणिगण। वलय शिरोमणि। किरण विभिन्न। तमिस्रम।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

देवं वद्यं। मदनांग हरं। ललनार्ध धरं। चन्द्रार्ध धरं। शम्भुम्।।

—(प्रथम, द्वितीय व तृतीय गीतक की पुनरावृत्ति)

ये सभी नियम समझने में अत्यन्त ही कठिन हैं किन्तु डॉ. प्रेमलता शर्मा जी ने इन नियमों को केवल लिखित रूप में नहीं वरन् प्रायोगिक रूप में भी प्रस्तुत कर दिखाया।

1985 में उज्जैन की कालिदास अकादमी ने पूर्वरंग पर एक व्याख्यान का आयोजन किया। इस व्याख्यान में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में कार्यरत डॉ. प्रेमलता शर्मा, डॉ. कमलेश दत्त त्रिपाठी व श्री प्रेमचन्द होम्बल जैसे उच्च कोटि के कलाकारों ने अभिनय भारती संस्था के माध्यम से अपनी प्रस्तुति दी और प्रायोगिक रूप में पूर्वरंग के भाग को शास्त्रोक्त विधिनुसार प्रस्तुत किया। इस प्रस्तुति ने व्याख्यान में उपस्थित दशकों का मन मोह लिया और पूर्वरंग के इस नवीन प्रयोग को सर्वसम्मति भी प्राप्त हो गई।

इस व्याख्यान के पश्चात् आने वाले वर्षों में अभिनय भारती संस्था ने कई अन्य नाटकों का भी मंचन किया जैसे दूतवाक्यम्, कर्णभारम्, मेघदूतम्, अभिज्ञान शाकुन्तलम् इत्यादि। किन्तु डॉ. प्रेमलता शर्मा के निधन के पश्चात् उनकी यह संस्था और रंगकर्मी बिखर गये। इस पर भी एकल स्वतन्त्र रूप से कार्य करते हुए इन सभी रंगकर्मियों ने कई नाटकों की प्रस्तुति पूर्वरंग सहित प्रस्तुत की हैं लेकिन जो ज्योति उस महान विदुषी ने जलाई थी उसकी लौ धीमी अवश्य पड़ गई।

आज यह हम नवीन कलाकारों के हाथ में हैं कि हम उस पूर्वरंग विधि को पुनः न खो दें जिसे इतने अथक प्रयासों से पुनर्जीवन प्राप्त हुआ था।

सन्दर्भ :

1. Shastri, Madhusudan (Ed.); Natyashastra of Bharatamuni- Vol-I, Chapter-4; Editor-Dr. K. Krishnamurti, Oriental
2. Ibid
3. Ibid
4. The song taken from audio recording in the voice of Dr. Premlata Sharma, and hand written notes. Source Sri. Premchand Hombal, BHU, Varanasi.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भास के नाटकों में कलात्मक अभिव्यक्ति के अवसर

नाट्यशास्त्र एक ऐसा ग्रन्थ है जो सदियों से लेकर आज तक भारत में प्रयुक्त सभी ललित कलाओं, साहित्य एवं शिल्प कलाओं का आधार बन स्थापित है। संगीत हो या वादन कला, नृत्य हो या नाट्य, चित्रकला, मूर्तिकला हो या स्थापत्य कला सभी किसी न किसी रूप में नाट्यशास्त्र में वर्णित सिद्धान्तों को ही आधार बना कर रचनाएँ करते हैं। जो तथ्य आचार्य भरत ने अपने इस ग्रन्थ में स्वीकार किये हैं उन्हीं का प्रयोग किया जाता है और जो अस्वीकार किये हैं उनका प्रयोग नहीं किया जाता।

किन्तु कुछ नाटककारों के रचे हुए ऐसे नाट्य अथवा रूपक आज भी प्राप्त हैं, जो, नाट्यशास्त्रीय परम्परा से परे हैं किन्तु प्रस्तुत किये जाते हैं। माना जाता है कि ये नाटककार भरत के पूर्ववर्ती अथवा समकालीन आचार्य रहे होंगे। ऐसे ही एक प्रसिद्ध नाटककार हैं आचार्य भास। उनके द्वारा रचे गये आज प्राप्त तेरह नाटकों को पढ़ने से हमें स्पष्ट रूप से नाट्यशास्त्रीय परम्पराओं पर आधारित नाटकों व इनके मध्य का अन्तर ज्ञात होता है।

भास का समयकाल पाँचवीं से द्वितीय शती ईसा पूर्व माना जाता है,[1] जो सम्भवतः भरतकाल से कुछ समय पूर्व रहा होगा। महाकवि कालिदास अपने नाटक मालविकाग्निमित्रम् के प्रारम्भ में लिखते हैं कि क्या हम अद्वितीय लेखकों जैसे भास, सौमिल्ल व कविपुत्र की रचनाओं को त्याग दें? क्या दर्शक कालिदास जैसे एक नवीन कवि की रचनाओं को सम्मान दे पायेंगें?[2] कालिदास जैसे महान कवि का यह उल्लेख मात्र भास के लेखन को उच्च स्तरीय बताता है।

भास एक अद्भुत लेखक हैं जिनकी कल्पनाशक्ति कलात्मक और अद्वितीय है। निर्जीव को सजीव स्वरूप प्रदान करना और चित्रपट का प्रथम प्रयोग सम्भवतः हमें भास के ही नाटकों में प्राप्त होता है। उनके नाटकों की कलात्मकता को समझने से पूर्व भास के विषय में जानना आवश्यक है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाटककार भास की महानता को, आज, सभी सुसंस्कृत कलाकार, रचनाकार व लेखक जानते हैं और उनके द्वारा रचित नाटकों का मंचन भी करते रहते हैं।

लगभग 19वीं शती तक भास का केवल नाम मात्र विभिन्न ग्रन्थों में प्राप्त होता था किन्तु उनका लेखन कार्य अप्राप्य था। आज भी भास के विषय में हमें सटीक तथ्य उपलब्ध नहीं हैं किन्तु, सन् 1912 में जब महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री ने त्रिवेन्द्रम् शृंखला के अन्तर्गत कुछ नाटकों का प्रकाशन भास द्वारा रचित नाटकों के रूप में किया तब मानो साहित्य जगत् मे भूचाल आ गया।[3]

स्वाभाविक रूप से त्रिवेन्द्रम् शृंखला के अंतर्गत छपे ये 13 नाटक व इनके रहस्यमयी रचनाकार भास चर्चा परिचर्चा का विषय बन गये।

कुछ विद्वानों ने महामहोपाध्याय गणपति शास्त्री के कथन का पूर्णतः समर्थन किया तो वहीं कुछ ने इन तथ्यों का परित्याग किया और कहा कि ये नाटक केरल के ही किसी परवर्ती लेखक की रचना हैं क्योंकि इनमें कहीं भी लेखक का नाम नहीं है।[4]

जो विद्वान इन नाटकों को भास की रचना मानते थे उनके तथ्यानुसार ये सभी नाटक मंच निर्देशन से प्रारम्भ होते हैं जबकि अन्य शास्त्रीय नाटकों में नान्दी के पश्चात् ही मंच निर्देशन प्रारम्भ होता है। भास के नाटकों का प्रारम्भ प्रस्तावना के स्थान पर सदा स्थापना कहलाया है और इस स्थापना में कहीं भी अन्य संस्कृत नाटकों की भांति लेखक का नाम नहीं है, भरतवाक्य सदा ही 'हे राजन आप इस पृथ्वी पर राज्य करें' शब्दों से समाप्त होता है।

मुद्रालंकार विधि से लिखे गये ये सभी नाटक प्रारम्भ में ही प्रमुख पात्रों को एकजुट कर देते हैं।[5] परवर्ती नाटकों की तुलना में ये नाटक छोटे हैं और भरत के सिद्धान्तों के विपरीत जाते हुए कुछ नाटक मंच पर युद्ध की भयावहता और मृत्यु को भी प्रदर्शित करते हैं। लेखन की यह शैली कालिदास के पश्चात् लिखे नाटकों में नहीं पायी जातीं क्योंकि वे सभी नाट्यशास्त्रीय पम्रपरा का अनुसरण कर लिखे गये हैं।[6]

कवि राजशेखर (880–920 ई.प.) अपने ग्रन्थ काव्यमिमान्सा में स्वप्नवासवदत्ता नामक एक नाटक को भास द्वारा रचित मानते हैं। केरल से प्राप्त 13 नाटकों में से एक नाटक स्वप्नवासवदत्ता भी था। रचनाशैली को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आधार रख कर स्वप्नवासवदत्ता के साथ अन्य 12 नाटकों की तुलना करने के पश्चात् इन सभी 13 नाटकों को भास का माना गया।[7]

भास द्वारा रचित इन नाटकों को चार श्रेणियों में विभाजित किया जाता है [8] –

1. सम्भवतः बृहद्कथा पर आधारित 4 नाटक हैं – स्वप्नवासवदत्तम्, प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्, अविमारकम् तथा चारुदत्तम्।
2. रामायणकथा पर आधारित दो नाटक हैं – प्रतिमा व अभिषेकनाटकम्।
3. महाभारतकथा पर आधारित छः नाटक हैं –पांचरात्रम्, मध्यमव्यायोगः, दूतवाक्यम्, दूतघटोत्कचम्, कर्णभारम् एवं ऊरुभंगम्।
4. कृष्णकथा पर आधारित नाटक है बालचरितम्।

भास के नाटकों की विशेषता का उल्लेख करते हुए बाणभट्ट अपने नाटक हर्षचरित में कहते हैं कि –

सूत्रधारकृतारम्भैर्नाटकैर्बहुभूमिकैः।
सपताकैर्यशो लेभे भासो देवकुलैरिव।।[9]

अर्थात् – भास के नाटक सूत्रधार के प्रवेश से प्रारम्भ होते हैं और उनके नाटकों में पात्रों व दृश्यों की अधिकता होती है।

भास के नाटकों की विशेषताएँ –

1. भास के अधिकांश नाटकों में, पुरुष पात्र ही नायक हैं और स्त्री पात्रों को महत्व बाद में रचे गये नाटकों जैसे स्वप्नवासवदत्ता आदि में दिया गया है। सम्भवतः क्योंकि नाट्यशास्त्र में ही स्त्री पात्रों को प्रदर्शित करने हेतु अप्सराओं का सृजन बताया गया है। यह एक और तथ्य है जो स्पष्ट करता है कि भास, भरत के पूर्ववर्ती अथवा समकालीन रचनाकार रहे होंगे।
2. भास के नाटकों में धर्मगत पात्रों और धर्म सम्बन्धी कार्यों को महत्व दिया गया है किन्तु तब भी मुख्य नायक के रूप में प्रायः प्रतिनायकों को ही लिया गया है जैसे ऊरुभंगम् में दुर्योधन, धीरोद्धत के स्थान पर धीरोदात्त नायक है जो अपने अन्तिम समय में धर्म अधर्म को ज्ञात कर अपने कार्यों पर पछता रहा है। इस प्रकार का कोई उल्लेख महाभारत ग्रन्थ में प्राप्त नहीं होता।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

3. वहीं दूसरी ओर प्रतिमानाटक में राम को वनवास भेजेने का आरोप कैकेयी को चुपचाप सहन करते दिखाया गया है जिससे कि अन्य धर्मकारी कार्यों का निर्वहन हो सके।[10]
4. भास के नाटकों में से ऊरुभंगम् व कर्णभारम् आज भी एकमात्र दुःखान्त प्रस्तुत करने वाले नाटक हैं। करुण रस से पूर्ण ये नाटक क्रमशः दुर्योधन व कर्ण पर केन्द्रित हैं। किन्तु भास ने दुःखान्त को भी सुखान्त में परिवर्तित करने का साधन प्रस्तुत किया है जैसे ऊरुभंगम् में दुर्योधन की मृत्यु को दर्शाने के बाद उसे स्वर्ग जाते हुए बतलाया गया है जिससे दुःखान्त के पश्चात् सुखान्त का आभास हो सके।
5. सम्भवतः भास ही एकमात्र ऐसे सुप्रसिद्ध रचनाकार हैं जिन्होंने कृष्ण को प्रमुख केन्द्रीय पात्र और धीरोदात्त नायक के रूप में प्रदर्शित करने वाले दो नाटक दूतवाक्यम् व बालचरितम् लिखे हैं। अन्य रचनाकारों ने श्रीकृष्ण को कहीं भी प्रमुख पात्र व धीरोदात्त नायक के रूप में प्रदर्शित नहीं किया है।[11] उनका चित्रण सदा ही धीरललित नायक के रूप में होता है।

भास की लेखन शैली अन्य संस्कृत नाटकों से भिन्न होने के कारण कलाओं का सम्प्रेषण भी इनमें भिन्नता से हुआ है। प्रायः सभी नाटकों में पूर्वरंग, नायिकाओं, गणिकाओं आदि के नृत्य गीत शिक्षण आदि के माध्यम से कलाओं को प्रस्तुत किया जाता था किन्तु भास, नृत्य संगीत के स्पष्ट उल्लेख के स्थान पर असामान्य स्थानों पर कई ऐसे चित्रण प्रस्तुत करते हैं जिनका यदि मंचन किया जाये तो नाट्य प्रस्तुति और अधिक कलात्मक और कल्पनाशील बन पायेगी।

ऊरुभंगम् व दूतवाक्यम् नाटकों से लिये गये कुछ ऐसे ही उदाहरण निम्नानुसार हैं –

ऊरुभंगम्[12] :– नाटक के पहले ही अंक में नान्दी और मंगलगान के बाद सूत्रधार प्रवेश कर सभी पात्रों का परिचय और श्रीकृष्ण की वन्दना एक ही श्लोक में प्रस्तुत कर कहता है कि –

भीष्मद्रोणतटां जयद्रथजलां गान्धारराजह्रदां
कर्णद्रौणिकृपोर्मिनक्रमकरां दुर्योधनस्रोतसम्।
तीर्णः शत्रुनदीं शरासिसिकतां येन प्लवेनार्जुनः
शत्रूणां तरणेषु वः स भगवानस्तु प्लवः केशवः।।1।।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitization by eGangotri

अर्थात् – भीष्म और द्रोण जिसके दोनों तट हैं, जयद्रथ जिसमें जल है, गान्धारराज (शकुनि) जिसमें ह्रद (गढा) हैं, कर्ण, द्रौणि (अश्वत्थामा) और कृपाचार्य ये तीनों क्रमशः जिसमें तरंग, घड़ियाल तथा मगरमच्छ के समान हैं, दुर्योधन जिसमें महान स्रोत (सोता) की तरह है, बाण और तलवार जिसमें बालू की भांति हैं – ऐसी शत्रुरूपी नदी को जिस नौका के सहारे अर्जुन ने पार किया, वही भगवान श्रीकृष्ण शत्रुओं को पार करने में (अर्थात् शत्रुओं पर विजय पाने में) आप लोगों के लिये नौका (प्लव) स्वरूप बनें।

नाटक की स्थापना का यह प्रारम्भिक श्लोक न केवल पात्रों का परिचय कराता है वरन् नाट्य प्रस्तुति को विभिन्न पात्रों, उनकी भिन्न भाव भंगिमाओं, आंगिक क्रियाओं और आहार्यों द्वारा मंच पर स्थापित करने के कलात्मक अवसर देता है। साथ ही ईश वन्दना से अन्त हो कर यह सब दर्शकों के मंगल की कामना करता है। लेखन की यह एक रोचक शैली है जो सौन्दर्य, आराधना, कथा सारांश सभी को एकसाथ प्रस्तुत करती है।

एतद्रणं हतगजाश्वनरेन्द्रयौधं
संकीर्णलेख्यमिव चित्रपटं प्रविद्धम्।
युद्धे वृकोदरसुयोधनयोः प्रवृत्ते
यौधा नरेन्द्रनिधनैकगृहं प्रविष्टाः।।3।।

अर्थात् – दुर्योधन व भीम के गदायुद्ध प्रारम्भ हो जाने पर योद्धा लोग इस युद्धभूमि में प्रवेश करना प्रारम्भ कर रहे हैं, यह समरभूमि मानो राजाओं के संहार का एकमात्र घर है और यहाँ हाथी, घोड़े, राजा और सैनिक समूह आहत होकर भूमि पर पड़े हुए हैं। ऐसी हालत में यह दृश्य उस चित्रपट की भांति आभासित हो रहा है जिसमें असंख्य छिद्र हो गये हों और जिसके सब रंग या अंकित चित्र आपस में घुलमिल गये हों।

स्थापना के इस तीसरे व अन्तिम श्लोक में भास एक चित्रपट को प्रस्तुत करने का स्वाभाविक अवसर प्रदान कर देते हैं। यही नहीं वे यहीं पर महाभारत युद्ध की भयावहता के दृश्यांकन के साथ ही इस नाटक के प्रमुख अंश दुर्योधन व भीम के गदायुद्ध का चित्रण भी प्रस्तुत कर देते हैं। ये दोनों ही श्लोक प्रारम्भ में ही नाटक के अन्त का आभास करा देते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दूतवाक्यम्[13] :– भास ने चित्रपट अर्थात् रंगपटी अथवा पर्दे का सर्वप्रथम व सर्वोच्च उल्लेख इस नाटक के एक ऐसे स्थान पर प्रस्तुत किया है जो कल्पना से परे है। पाण्डवों के दूत श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर राजसभा में उद्दण्डता से और अपमान द्वारा स्वागत करने हेतु दुर्योधन अपनी राजसभा में एक चित्रपट लगवाता है जिसमें द्रौपदी वस्त्रहरण का सम्पूर्ण चित्रण रंगों द्वारा उकेरा जाता है। दुर्योधन के संवाद से ही हमें इस सम्पूर्ण चित्रपट का सजीव चित्रण अपनी आँखों के समक्ष प्रकट होते दिखाई देता है :–

अहो! दर्शनीयोऽयं चित्रपटः। एष दुःशासनो द्रौपदीं केशहस्ते गृहीतवान्। एषा खलु द्रौपदी,

दुःशासनपरामृष्टा सम्भ्रमोत्फुल्ललोचना।
राहुवक्त्रान्तरगता चन्द्रलेखेव शोभते।।7।।

एष दुरात्मा भीमः सर्वराजसमक्षमवमानितां द्रौपदीं दृष्ट्वा प्रवृद्धामर्षः सभास्तम्भं तुलयति। एष युधिष्ठिरः,

सत्यधर्मघृणायुक्तो द्यूतविभ्रष्टचेतनः।
करोत्यपांगविक्षेपैः शान्तामर्षं वृकोदरम्।।8।।

एष इदानीमर्जुनः,

रोषाकुलाक्षः स्फुरिताधरोष्ठ–
स्तृणाय मत्वा रिपुमण्डलं तत्।
उत्सादयिष्यन्निव सर्वराज्ञः
शनैः समाकर्षति गाण्डिवज्याम्।।9।।

एष युधिष्ठिरोऽर्जुनं निवारयति। एतौ नकुलसहदेवौ,

कृतपरिकरबन्धौ चर्मनिस्त्रिंशहस्तौ
परुषितमुखरागौ स्पष्टदष्टाधरोष्ठौ।
विगतमरणशंकौ सत्वरं भ्रातरं मे
हरिमिव मृगपोतौ तेजसाभिप्रयातौ।।10।।

एष युधिष्ठिरः कुमारावुपेत्य निवारयति –

नीचोऽहमेव विपरीतमतिः कथं वा
रोषं परित्यजतमद्य नयानयज्ञौ।
द्यूताधिकारमवमानममृष्यमाणाः

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सत्वाधिकेषु वचनीयपराक्रमाः स्युः ।।11।।

इति एष गान्धारराजः,

अक्षान् क्षिपन् सकितवं प्रहसन् सगर्वं
संकोचयन्निव मुदं द्विषतां स्वकीर्त्या।
स्वैरासनो द्रुपदराजसुतां रुदन्तीं
काक्षेण पश्यति लिखत्यभिखं नयज्ञः ।।12।।

एतावाचार्यपितामहौ तां दृष्ट्वा लज्जायमानौ पटान्तान्तर्हितमुखौ स्थितौ। अहो अस्य वर्णाद्यता। अहो भावोपपन्नता! अहो युक्तलेखता! सुव्यक्तमालिखितोऽयं चित्रपटः। प्रीतोऽस्मि।

अर्थात् – वाह! यह चित्रपट तो दर्शनीय है। द्रौपदी के केशों को पकड़े हुए यह दुःशासन है और यह द्रौपदी – जो दुःशासन से आक्रान्त होने पर भय से नेत्र विस्फारित किये हुए इस समय ऐसी शोभा पा रही है मानो चन्द्रकला हो जो राहु के मुख में फंसी हुई है।7।

सभी राजाओं के सामने अपमानित की जाती हुई द्रौपदी को देखकर यह क्रूर भीम क्रोधवश सभाभवन के खम्भे को मानो उखाड़ सा रहा है। यह युधिष्ठिर – जुए के कारण मति भ्रष्ट और सत्य, धर्म और घृणा (दया) से अभिभूत हो आँखों के इशारे से ही भीमसेन के क्रोध को शान्त कर रहा है।8।

यह वह अर्जुन है – जो क्रोध के कारण विस्फारित नेत्रों व फड़कते अधरों से युक्त होकर समस्त शत्रुमण्डल को तिनके के समान मानते हुए सब राजाओं को मानो नष्ट कर देने हेतु गाण्डीव धनुष की प्रत्यंचा को धीरे धीरे खींच रहा है।9।

यह युधिष्ठिर, अर्जुन को रोक रहा है। ये नकुल और सहदेव हैं – कमर कसे हुए, हाथों में खड्ग व ढाल लिये हुए, कठोर मुख वाले, स्पष्ट रूप से ओठों को चबा रहे, मृत्यु के भय को भूले हुए, मेरे भाई की ओर ऐसे वेग से बढ़ रहे हैं जैसे हरिण के बच्चे सिंह की ओर झपट रहे हों।10।

यह युधिष्ठिर दोनों कुमारों के समीप जा कर उन्हें रोक रहा है – भले ही, मैं ही नीच उल्टी बुद्धि वाला हूँ किन्तु उचित एवं अनुचित के विशेषज्ञ आप दोनों आज क्रोध को छोड़ दीजिये। द्यूतक्रीडा से हमारे अधिकारों जा जो हनन हुआ है उसे सहन करते हुए अपने सत्त्व मन से शान्त रहते हुए जो इस

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दु:श्कार्य में दिये गये अपने वचनों को स्मरण रखे वही सर्वश्रेष्ठ मानव सिद्ध होगा और उसकी सात्विक गरिमा को कोई भंग नहीं कर सकेगा।11।

यह गान्धारराज बैठे हैं, जो जुएँ में तथा कूटनीति में कुशल गर्व के साथ हँसते हुए पाँसों को फेंकते हुए तथा अपनी कीर्ति से शत्रुओं के हर्ष को संकुचित करते हुए अपने आसन पर बैठ रोती हुई द्रौपदी को तिरछी दृष्टि से देखते हैं और आकाश में या पृथ्वी पर पाँसे से रेखा भी खींच रहे हैं। 12।

ये द्रोणाचार्य व भीष्मपितामह उस द्रौपदी की दशा को देखकर लज्जित होते हुए वस्त्रों में मुख छिपाये बैठे हैं।

अहा, इस चित्र के रंगों की श्रेष्ठता! अहा भावों की अभिव्यक्ति एवं उपयुक्त चित्रकारी! इस चित्रपट को बहुत स्पष्टता से चित्रित किया गया है। मैं प्रसन्न हूँ।

दुर्योधन का यह वक्तव्य न केवल उस सम्पूर्ण चित्रपट के एक एक अंश को विस्तार से वर्णित करता है अपितु लेखक की कल्पनाशक्ति और उनकी कलात्मकता को भी दर्शाता है। यहाँ विभिन्न भावों, रसों, अभिनयों आदि का सम्पूर्ण और सूक्ष्म चित्रण है जो कलाकारों को नाट्य प्रस्तुति हेतु भाव भंगिमाओं, वेशभूषा और आहार्यादि द्वारा प्रदर्शित करने का अद्‌भुत अवसर प्रदान करता है।

मुख का रक्तमय होना, अधरों का फड़कना, नेत्रों का फैलना आदि आंगिक अभिनय की सूक्ष्मताएँ हैं जो विभिन्न स्थायी व संचारी भावों को भी अभिव्यक्त करते हैं उनका इतना सूक्ष्म और सटीक वर्णन केवल वही कर सकते हैं जिन्हें इनका संपूर्ण ज्ञान हो। यह वर्णन सिद्ध करता है कि भास को नृत्य भंगिमाओं का सूक्ष्म ज्ञान था।

श्रीकृष्ण के विराट स्वरूप का वर्णन करते समय भास ने नाटक में पुनः अपनी अद्‌भुत कलात्मकता का प्रदर्शन किया है। उन्होंने दूतवाक्यम् में श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र, पांचजन्य शंख, नन्दक तलवार, कौमोदकि गदा, शारंग धनुष सभी को सजीव बताया है। यहाँ तक कि जब श्रीकृष्ण क्रोधवश सुदर्शन द्वारा दुर्योधन का नाश करने के लिये उद्यत हो उठते हैं तब उनका यह चक्र ही एक संवाद द्वारा कृष्ण को अपने अवतरण का लक्ष्य स्मरण कराता है और उनके क्रोध को शान्त करता है।

भास की यह अद्‌भुत कल्पना नाट्य प्रस्तुति को सजाने में सिद्ध होती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भास द्वारा रचित सभी नाटक किसी न किसी रूप में अन्य कवियों द्वारा रचित नाटकों से भिन्न हैं। इस भिन्नता और नाट्यशास्त्रीय परम्परा से परे एक नवीन संसार की ओर ले जाने की क्षमता के कारण ये सभी नाटक और प्रमुख रूप से ऊरुभंगम् व दूतवाक्यम् अत्यन्त लोकप्रिय हो चुके हैं। कोई भी रचनाकार अथवा निर्देशक यदि भास की कल्पनाओं के साथ अपनी कल्पना को जोड़े तो जो प्रस्तुति समक्ष आयेगी उसमें कलात्मकता की सर्वोच्च अभिव्यक्ति प्रस्तुत की जा सकेगी।

मतभेद आज भी है कि ये नाटक भास द्वारा लिखे गये हैं अथवा नहीं किन्तु अधिकांश कलाकारवर्ग इन्हें आज भी भास द्वारा रचित मानते हुए इस महान रचनाकार की अद्भुत कलात्मकता को सादर नमन करता है।

सन्दर्भ :

1. en.wikipedia.org/wiki/Bhasa
2. Ibid.
3. Devadhar, C.R. ; Introduction of Bhasa Natakchakram ;1987, Motilal Banarasidass Publications
4. Ibid.
5. Ibid.
6. en.wikipedia.org/wiki/Bhasa
7. Ibid.
8. Devadhar, C.R. ; Introduction of Bhasa Natakchakram ;1987, Motilal Banarasidass Publications
9. Ibid.
10. en.wikipedia.org/wiki/Bhasa
11. Ibid.
12. Oorubhangam, translation by Sri. Pt. Kapil Dev Giri.
13. Mahakavi Sri Bhas-Praneetam-Dootavakyam, edited by Prof. Satyapal Ramdev and Prof. Satyapal Chhaddha; Bhartiya Sanskrit Bhavan (1978).

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

संस्कृत रूपकों में नृत्य प्रयोग की संभावनाएँ

रूपक का अर्थ है नाट्य जिसे आज हम नाटक के नाम से भी जानते हैं। आचार्य भरत अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में दस प्रकार के रूपकों का उल्लेख करते हैं। ये हैं प्रकरण, भाण, इहामृग, व्यायोग, नाटक, डिम, प्रहसन, वीथी, समवकार, एवं अंक। आज रूपकों के ये सभी प्रकार हिन्दी भाषा में नाटक अथवा नाट्य के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। इन नाट्य रूपों की प्रस्तुति में नृत्य, गायन और वाद्य वादन का सदा से ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है।

समय के साथ इन प्रस्तुतियों में परिवर्तन अवश्य आते रहे किन्तु नृत्य गायन से परिपूर्ण नाट्य प्रस्तुतियों ने सदा ही जनसाधारण को अपनी ओर आकर्षित किया है और आज भी कर रहे हैं। प्राचीन साहित्य परम्परा में काव्य (संस्कृत साहित्य) को दो रूपों में विभक्त किया जा सकता है – श्रव्य और दृश्य।

श्रव्य काव्य में जहाँ पद्यात्मक रचनाओं को लिया जा सकता है वहीं दृश्य काव्य में दशविध रूपकों (नाट्य) को समाहित किया जा सकता है क्योंकि –

अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्।।[1]

– (दशरूपक– 1/7)

अर्थात्, पूर्व में घटित घटनाओं की अवस्थाओं का अनुकरण करना ही नाट्य अथवा रूपक है। घटनाओं के पात्रों का आरोपण अथवा प्रदर्शन जब प्रस्तुति करने वाले नटों पर किया जाता है तब वह रूप कहलाता है, उदा. राम आदि पात्रों को नटों द्वारा प्रदर्शित करना। इसी कारण, इन घटनाओं का अनुकरण करना रूपक कहलाता है।

प्राचीन काल में प्रमुख रूप से संस्कृत भाषा में ही रूपकों को प्रदर्शित किया जाता था। इन संस्कृत रूपकों के प्रयोग हेतु आवश्यक अभिनय को आचार्य भरत ने चार भागों में विभक्त किया है – आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक। इन अभिनयों के समन्वय के साथ प्रस्तुत दृश्य काव्य आनन्द अर्थात्

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रसानुभूति प्रदान करने वाला होता है। इसी प्रस्तुतिकरण को आचार्य भरत प्रयोग कहते हैं। प्रयोग की इस परम्परा का मुख्य ग्रन्थ नाट्यशास्त्र है जिसमें पितामह ब्रह्मा द्वारा निर्मित पंचमवेद अर्थात् नाट्यवेद के सभी सिद्धान्तों का विस्तृत वर्णन किया गया है। नाट्य का आख्यान पंचम्वेद (नाट्यवेद) में किया गया है।

नाट्याख्यं पंचमं वेदम्।।[2]

– (नाट्य शास्त्र– 1/15)

ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से रस तत्वों को ग्रहण कर परमपिता ब्रह्मा ने पंचमवेद (नाट्यवेद) का निर्माण किया।

जग्राह पाठ्यमृग्वेदात्सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसानाथर्वणादपि।।[3]

–(नाट्य शास्त्र –1/17)

इस नाट्यवेद की सृष्टि पितामह ब्रह्मा ने दुखी, अज्ञानी एवं सन्तप्त जनों के लिये की है जिससे उन्हें प्रसन्नता और शान्ति प्राप्त हो सके।

दुःखार्तिशोकनिर्वेदखेदविच्छेदकारणम्।।[4]

–(अभिनय दर्पण.–10)

इस नाट्य प्रयोग के तत्वों में गीत, वाद्य, नृत्त का प्रयोग नाट्य में सौन्दर्य का अलौकिक चमत्कार कर दर्शकों की रसानुभूति, उनके आनन्द को द्विगुणित कर देता है। गीत, वाद्य, नृत्त इन के बिना नाट्य प्रयोग अपूर्ण माना जाता है। कुछ विद्वान इन तत्त्वों के बिना केवल पठन मात्र को ही नाट्य मानते हैं, वे भूल जाते हैं कि काव्य पठन के सौन्दर्य का आनन्द कुछ दर्शक ही ले पाते हैं जबकि गीत, वाद्य, नृत्त तीनों के समावेश से काव्य के सौन्दर्य का आनन्द सभी दर्शक ले पाते हैं।

नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।।[5]

–(मालविकाग्निमित्रम् प्रथम अंक –4)

गीत अथवा गायन – नाट्य प्रयोग में सर्वाधिक आकर्षक पृष्ठभूमि की संरचना स्वरों तथा तदाश्रित गीतों के माध्यम से ही की जाती है। गीत के अन्तर्गत स्वर, प्राणो का संचरण तथा लय गति प्रदान कर दर्शकों को रसानुभूति

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रदान करने में समर्थ होता है। नाट्यशास्त्र के अनुसार, गीत, नाट्य का अंग ही नहीं प्राण हैं।

वाद्य अथवा वादन – संगीतात्मक ध्वनि तथा गति को प्रकट करने वाले उपकरणों को वाद्य कहा गया है। जिसकी संज्ञा आचार्य भरत ने आतोद्य दी है। सांगीतिक ध्वनियाँ नखज (नख प्रयोग से उत्पन्न), चर्मज (चर्म के प्रयोग से उत्पन्न), वायुज (वायु के प्रयोग से उत्पन्न), धातुज (धातु द्वारा उत्पन्न) तथा शरीरज (शरीर अथवा कण्ठ द्वारा उत्पन्न) होती हैं। इन ध्वनियों को उत्पन्न करने वाले वाद्य पंचमहावाद्यानि कहे जाते हैं।

नृत्त अथवा नर्तन – नटन एक क्रिया है जिसके तीन भेद हैं – नाट्य, नृत्त एवं नृत्य। इन तीनों में नाट्य व नृत्त आचार्य भरत के नाट्यशास्त्र में उल्लिखित है और नृत्य शब्द का प्रयोग भरत के परवर्ती आचार्यों ने किया है। भाव विहीन, सौन्दर्यपूर्ण गात्र विक्षेप जो ताल लयाश्रित है वह नृत्त कहलाया है।

नृत्तं ताललयाश्रयम्।।[6] *–(दशरूपक – 1/10)*
भावाभिनयहीनं तु नृत्तमित्यभिधीयते।।[7] *–(अभिनय दर्पण – 15)*

नाट्य में आचार्य भरत ने नृत्त का समावेश भगवान शिव के आदेशानुसार किया। नाट्यशास्त्र के चतुर्थ अध्याय में नृत्त स्वरूप ताण्डव और बीसवें अध्याय में लास्य का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। उद्धत स्वरूप ताण्डव को पुरुष प्रधान और लालित्यपूर्ण लास्य को स्त्री प्रधान माना जाता है।

शिव से उत्पन्न इस नृत्त में अभिनय के समावेश से नृत्य उत्पन्न हुआ जिसका प्रयोग पूर्वरंग में आसारित आदि गीतों के साथ किया जाता है। नृत्य को इस प्रकार से परिभाषित किया गया है –

अन्यद्भावाश्रयं नृत्यम्।।[8] *–(दशरूपक – 1/9)*
रसभावव्यंजनादियुक्तं नृत्यमितीर्यते।।[9] *–(अभिनय दर्पण – 16)*

भरत के समयकाल में नृत्त एवं हस्ताभिनय का प्रयोग अधिकांशतः पूर्वरंग तक ही सीमित था। कालान्तर में मुख्य रूपक के साथ जुड़कर नृत्य का प्रादुर्भाव हुआ। महाकवि कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् में जिस छलित का वर्णन किया गया है, वह एक नृत्य रूप ही है। भरत के उपरान्त कोहल ने नृत्य के माध्यम से उपरूपकों की सृष्टि की। कालान्तर में नाटक, प्रकरण आदि रूपक भेदों में नृत्य का प्रयोग होने लगा।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्रायः प्राचीन कविगण नाट्य में नृत्य गीतादि तत्वों की महत्ता को समझते हुए रूपकों का लेखन करते थे। प्रस्तुतकर्ता भी इन कथानकों के आधार पर नृत्यादि से परिपूर्ण रूपकों का प्रदर्शन करते रहे। इन रूपकों के प्रयोग में नृत्य की अपार सम्भावनाएँ हैं। इनके प्रयोग के लिये आचार्य भरत द्वारा वर्णित अंग, प्रत्यंग, उपांग भेदों व उनकी क्रियाओं का समुचित ज्ञान आवश्यक है।

इसके अन्तर्गत असंयुत (एक हाथ), संयुत (दोनों हाथ) हस्ताभिनय, उपांगाभिनय – शिर (सिर), दृष्टि (आँखें), नासा (नाक), भ्रू (भौंहें), कपोल (गाल), चिबुक (ठोडी), ओष्ठ (होंठ) और तारा (आँखों की पुतलियाँ) आदि का एवं भौम्या तथा आकाशिकी चारी का समावेश है।

भरतकाल में इस विस्तृत आंगिकाभिनय का अभ्यास नटों के लिये आवश्यक था परन्तु समय के साथ साथ नाट्य से स्वतन्त्र होकर नृत्त एवं नृत्य ने अपना भिन्न अस्तित्व बना लिया जिन्हें हम विभिन्न शास्त्रीय व लोक नृत्यों के रूप में आज देखते हैं। भरत एवं परवर्ती काल में रूपक प्रयोग के अन्तर्गत जहाँ नाट्य, नृत्त, नृत्य आते थे, वहीं अब वे स्वतन्त्र होकर अलग अलग रूपों में विकसित हुए। जो संगीत – गीत, वाद्य तथा नृत्य के रूप में था वह भी अपने अर्थ से भिन्न होकर संगीत एवं नृत्य बन गया।

रूपकों में नृत्य के उदाहरण स्वरूप यहाँ महाकवि भास और महाकवि कालिदास के कुछ नाट्यों का उल्लेख है –

भास के रूपकों में नृत्य की संभावनाएँ –

कविवर भास के नाटक अन्य कवियों के नाटकों से कई रूपों में भिन्न रहे हैं। कलाओं को प्रस्तुत करने में भी भास के नाटकों में नवीनता दिखाई देती है। पूर्वरंग की अपेक्षा भास नाटकों के मध्य ऐसे अकल्पनीय स्थानों में कलाओं का सफल सम्प्रेषण करते हैं जो किसी सामान्य लेखक की कल्पना से परे है।

ऐसे दृश्यों को मंच पर प्रस्तुत करना स्वतः में एक चुनौतीपूर्ण कार्य हो जाता है। यदि कोई नाट्यकार भास के किसी नाटक के इन दृश्यों का सफल मंचन कर सके तो वह प्रस्तुति अपने आप ही कलात्मकता के उत्कृष्ट शिखर पर पहुँच जायेगी। नृत्य प्रस्तुत करने हेतु ऐसे ही कुछ नाट्यांश निम्नानुसार हैं –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऊरुभंगम्[10] :– इस नाटक के पहले अंक में एक ही श्लोक द्वारा सूत्रधार न केवल सभी पात्रों का परिचय देता है वरन् श्रीकृष्ण का वन्दन भी कर कहता है; वह शत्रुरूपी नदी जिसके दो तट पितामह भीष्म व आचार्य द्रोण के समान हैं, सिन्धु नरेश जिसमें जल रूप में बहते हैं, गान्धारराज शकुनि जिसमें ह्रद अर्थात् गढा हैं, कर्ण तरंगे हैं और अश्वत्थामा एवं कृपाचार्य जिसमें क्रमशः घड़ियाल व मगरमच्छ के रूप में तैरते हैं।

दुर्योधन एक महान स्रोत के रूप में सदा इस नदी को प्रवाहमान बनाये रखता है। बाण और तलवार रूपी रेत से घिरी इस नदी को जिस नौका स्वरूप श्रीकृष्ण के सहारे अर्जुन ने पार किया वही भगवान श्रीकृष्ण शत्रुओं को पार करने में सभी के लिये नौका स्वरूप बनें।

नाटक के कथानक को स्थापित करते इस श्लोक के द्वारा सभी पात्रों को नृत्यात्मक रूप से विभिन्न भाव भंगिमाओं, आंगिक क्रियाओं और आहार्याभूषणों द्वारा मंच पर प्रस्तुत करने के कई अवसर प्राप्त होते हैं जिन्हें यदि सफल रूप से स्थापित किया जाये तो आगे सम्पूर्ण नाट्य प्रस्तुति में दर्शकों को इन पात्रों को पहचानने में सरलता होगी।

कुछ अन्य श्लोकों के द्वारा भास ने महाभारत के भीषण युद्ध का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है। दुर्योधन व भीम का गदायुद्ध प्रारम्भ हो चुका है और कुरुक्षेत्र में मृतक राजाओं, सैनिकों, हाथियों, घोड़ों के असंख्य शव जो हर ओर पड़े हैं रक्त की नदियाँ बह रही हैं। युद्ध की ऐसी भयावहता का दृश्यांकन नृत्य क्रियाओं के साथ ही मंच के उपकरणों व रचनात्मक आहार्यों की सहायता से बहुत ही सुंदर रूप से प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

दूतवाक्यम्[11] :– कई दृश्यों के रचनात्मक वर्णन हेतु भास ने चित्रपट अर्थात् पर्दे का भी प्रयोग अपने नाटकों में किया है। दूतवाक्यम् नाटक में श्रीकृष्ण के शान्तिदूत बन कर हस्तिनापुर की सभा में आने का वर्णन कथानक के रूप में प्रस्तुत है। उनका अपमान करने की दृष्टि से दुर्योधन सभा में द्रौपदी वस्त्रहरण का एक चित्रपट लगवाता है जिसका भास ने ऐसा सजीव वर्णन किया है कि सम्पूर्ण दृश्य स्वतः ही आँखों के सामने आ जाता है।

द्रौपदी के केशों को पकड़े हुए अट्टहास करता दुःशासन और उससे भयाक्रान्त द्रौपदी जिसके नेत्र इस अपमान, क्रोध और भय से विस्फारित हो रहे हैं, सभी राजाओं के सामने हो रहे द्रौपदी के इस अपमान से तीव्र क्रोध से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उद्वेगित भीम का मुख ऐसा रक्तमयी प्रदर्शित हो रहा है कि मानो वह सभाभवन के खम्भे उखाड़ कर सब कुछ नष्ट कर देगा।

अर्जुन भी क्रोधावेश में आकर फड़कते नेत्रों व अधरों से सभी को देखते हुए गाण्डीव की प्रत्यंचा को धीरे धीरे खींच रहा है, नकुल और सहदेव भी क्रोध से भरे हुए हाथों में खड्ग व ढाल लिये हुए दुःशासन की ओर बढ़ रहे हैं। वहीं जुएँ में द्रौपदी को दाँव पर लगाने के अपराध से ग्रसित युधिष्ठिर वहाँ एक ओर आत्मग्लानि से भर कर और क्षमाप्रार्थी हो अपने अनुजों को शान्त करने का प्रयत्न कर रहा हैं।

उधर गान्धारराज शकुनि अपमान और क्रोधावेश से रोती हुई द्रौपदी को कुटिल दृष्टि से मुस्कुराते हुए देख रहे हैं, द्रोणाचार्य और पितामह भीष्म, द्रौपदी की इस दशा को देख लज्जित हो वस्त्र से मुख छिपाये बैठे हैं। चित्रपट का ऐसा वर्णन करते हुए दुर्योधन उस चित्र के रंगों और अद्‌भुत चित्रकारी की स्पष्टता की प्रशंसा करता है।

दुर्योधन के इन संवादों से लेखक की अद्‌भुत कल्पनाशक्ति का परिचय हमें स्वतः ही सरलता से प्राप्त हो जाता है। साथ ही यह वर्णन जो इतना स्पष्ट और सौन्दर्यमयी है तो यदि इस पर पूर्ण कलात्मकता और सृजनात्मकता के साथ चित्रपट पर वर्णित विभिन्न भावों, रसों और आहार्यों को प्रयुक्त करते हुए नृत्य संरचना की जाये तो सम्पूर्ण नाट्‌य प्रस्तुति और उत्कृष्ट हो जायेगी।

अगले दृश्य में जब श्रीकृष्ण अपना विराट स्वरूप प्रदर्शित करते हैं तब पुनः कवि भास ने अपनी अद्‌भुत कल्पना का परिचय देते हुए श्रीकृष्ण के आयुधों सुदर्शन चक्र, पांचजन्य शंख, नन्दक तलवार, कौमोदकि गदा, शांग धनुष सभी को सजीव बना दिया है, अतः प्रस्तुति में इन सभी को सुन्दर नृत्य भंगिमाओं द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है जिससे नाट्‌य प्रस्तुति और अधिक जीवन्त व रोचक हो सके।

कालिदास के रूपकों में नृत्य की संभावनाएँ –

मालविकाग्निमित्रम् – मालविका और अग्निमित्र के प्रेम की इस गाथा में मालविका को एक नर्तकी के रूप में प्रस्तुत किया गया है, तो स्वाभाविक है कि इस रूपक में नृत्य के अंश अवश्य ही सम्मिलित और वर्णित होंगे। इसके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अतिरिक्त अग्निमित्र की रानी इरावती भी गुरु हरदत्त से नृत्य का प्रशिक्षण प्राप्त करती है। रूपक के प्रथम अंक के प्रारम्भ में ही मालविका के नृत्य गुरु आचार्य गणदास के मुख से नाट्य यज्ञ को चाक्षुष यज्ञ कहते हुए उसकी प्रशंसा इस प्रकार की गई है–

देवानामिदमामनन्ति मुनयः कान्तं क्रतुं चाक्षुषं
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वांगे विभक्तं द्विधा।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।।[12]

–(प्रथम अंक – 4)

अर्थात् – नाट्यशास्त्र के प्रवर्तक भरतादि मुनि लोगों का कहना है कि नाट्य देवताओं की आँखों को सुहाने वाला यज्ञ है। स्वयं महादेव शंकर ने पार्वती से विवाह करके अपने अर्धनारीश्वर अंग को दो भागों में विभक्त किया, जिन्हें ताण्डव और लास्य के नामों से जाना जाता है। इसमें सत्व, रज और तम तीनों ही गुण दिखाई देते हैं। अतएव भिन्न रुचि वाले लोगों के लिये प्रायः नाटक ही ऐसा उत्सव है जिसमें सबको एक सा आनन्द प्राप्त होता है।

मालविका का छलित नृत्य – द्वितीय अंक में मालविका के एकल नृत्य का अद्भुत वर्णन है।

दुर्लभः प्रियो में तस्मिन् भव हृदय निराशम्
अहो अपांगो में परिस्फुरति किमपि वामः।
एव स चिरदृष्टः कथं पुनरूपनेतव्यो
नाथ मां पराधीना त्वयि परिगणय सतृष्णाम्।।[13]

–(द्वितीय अंक– 4)

अर्थ – हे हृदय, तेरा प्रिय दुर्लभ है उसकी आशा छोड़ दे। क्या कारण है कि मेरा वाम अंग फड़क रहा है और मुझे आशान्वित कर रहा है। बड़े भाग्य से प्रिय के दर्शन हुए हैं, कैसे मैं उन्हें अपनाऊँ? मैं पराधीन हूँ किन्तु मेरा स्नेह आप पर है यह भाव किस तरह मैं व्यक्त करूँ।

परिव्राजिका द्वारा नृत्य प्रशंसा – मालविका ने गीत की सभी बातों का ठीक ठीक अर्थ अंगों के अभिनय द्वारा पूर्ण रूप से दिखा दिया। इनके पैर भी लय ताल के साथ चल रहे थे और फिर गीत के रस में भी वे पूरी तरह से तन्मय हो गईं थीं। उनके हस्त संचालनों द्वारा किया गया अभिनय भी सुकुमार था।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह प्रशंसा सिद्ध करती है कि कवि नृत्य का केवल वर्णन ही नहीं अपितु उसकी आवश्यक सूक्ष्मताओं का भी ज्ञान रखते हैं। कवि का यह ज्ञानपूर्ण वर्णन रचनाकार के लिये चुनौतीपूर्ण होता है क्योंकि उसे नृत्य भी उच्च कोटि का प्रस्तुत करना होगा।

जिस रूपक के प्रथम अंक में ही नाट्य व नृत्य की ऐसी प्रशंसा व वर्णन किया हो उसमें आगे नृत्य प्रस्तुतियों के अवसर स्वतः ही उत्पन्न हो जायेंगे। यदि केवल नृत्य रचनाकार की अपूर्व कल्पनाशक्ति उसमें सम्मिलित हो जाये तो एक अद्वितीय प्रस्तुति का सृजन सम्भव हो सकेगा।

विक्रमोर्वशीयम्[14] – इस रूपक की नायिका उर्वशी एक अप्सरा है जिसे कुछ समयावधि तक धरती पर जीवन व्यतीत करने का श्राप मिलता है। नायक, राजा पुरूरवा हैं। रूपक के द्वितीय अंक में देवदूत चित्रलेखा से उर्वशी को शीघ्र आकर देवराज के समक्ष आचार्य भरत द्वारा कल्पित प्रयोग प्रस्तुत करने के लिये कहता है।

इसी नृत्य नाट्य प्रयोग में उर्वशी जो अपने प्रियतम पुरूरवा के प्रेम में व्याकुल रहती है, वह पुरुषोत्तम कहने के स्थान पर पुरूरवा कह देती है। जिस कारण भरतमुनि क्रोधित हो उसे श्राप देते हैं। उर्वशी की नृत्य प्रस्तुति का यह सम्पूर्ण दृश्य रूपक में कहीं वर्णित नहीं है किन्तु सम्पूर्ण रूपक का प्रमुख आधार होने के कारण इस नृत्य दृश्य को सुन्दरता और कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया जा सकता है।

रूपक के चतुर्थ अंक में उर्वशी कुछ कारणों से पुरूरवा से दूर हो जाती है और वे प्रेमोन्मत्त होकर उर्वशी को वन वन भटकते हुए ढूँढते हैं। उर्वशी को ढूँढने से लेकर प्राप्त करने तक अनेकों ध्रुवाएँ हैं जिन्हें नृत्य के बिना प्रस्तुत करना सम्भव ही नहीं है। इनमें सम्पूर्ण वन दृश्य, मोर आदि कई वन्य जीवों का चित्रण बड़े ही रोचक रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। पुरूरवा सजीव, निर्जीव, मूक सभी वन्य जीवों जैसे पेड़, लताओं, पशुओं आदि से उर्वशी के बारे में समाचार पूछते हैं।

इन विभिन्न वन्य जीवों और पेड़ पौधों व लताओं को प्रस्तुत करने के लिये आहार्याभिनय तो आवश्यक है ही किन्तु जीव के अनुरूप नृत्य भंगिमाओं को प्रस्तुत करना भी आवश्यक है अन्यथा प्राणियों का रूप तो उचित होगा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

किन्तु उसका आंगिक विरूप हो जायेगा। अतः नृत्यमयी आंगिक गतियों व क्रियाओं के प्रयोग रूपक के इस अंक को रोचक बनाने के लिये आवश्यक है।

3. अभिज्ञान शाकुन्तलम्[15] – दुष्यन्त और शकुन्तला की इस अभूतपूर्व प्रेमगाथा में नृत्य के स्पष्ट अंशों का उल्लेख तो नहीं है किन्तु कई ऐसे दृश्य समक्ष आते हैं जिनमें नृत्य का प्रयोग इस नाट्य प्रस्तुति को और अधिक रोचक बना सकता है। रूपक के प्रथम अंक में राजा दुष्यन्त अपने रथ पर मृगया (शिकार) के लिये एक मृग का पीछा करते हुए आते हैं और उनकी भेंट शकुन्तला से होती है जो एक भ्रमर से व्यग्र रहती है।

इस दृश्य में रथ के वेग और मृग की गति को दर्शाने के लिये तीव्र गति पर नृत्य परक आंगिकाभिनय प्रस्तुत किया जा सकता है। वहीं शकुन्तला को हो रही भ्रमर बाधा को सौम्य लालित्य के साथ प्रदर्शित करने के लिये भी नृत्य की भाव भंगिमाओं का प्रयोग सम्भव है।

आगे रूपक के चतुर्थ अंक में अनुसूया एवं प्रियम्वदा द्वारा वर्णित श्लोक में शकुन्तला हेतु प्रकृति द्वारा प्रदत्त वस्त्र आभरणादि आहार्य का उल्लेख है। जिन्हें संवादों के साथ नृत्य की हस्त मुद्राओं द्वारा प्रदर्शित कर शकुन्तला को आहार्याभूषणों से सजाने के दृश्य को भी प्रस्तुत किया जा सकता है। इस दोनों ही दृश्यों में नृत्य भंगिमाओं का प्रयोग प्रस्तुति को सुदृढ़ बनायेगा।

केवल ये रूपक ही नहीं अपितु संस्कृत भाषा में काव्यात्मक शैली में रचे गये प्रायः सभी रूपकों में नृत्य प्रस्तुति की सम्भावनाएँ होती हैं किन्तु आज उन्हें प्रस्तुत करने हेतु ऐसे नाट्यकर्ताओं की कमी हैं जो नृत्य में भी कुछ रूप में पारंगत हों। क्योंकि, यदि नाट्य निर्देशक ही नृत्य निर्देशक हो तो उचित व सटीक स्थानों पर नृत्यांश सम्मिलित कर नाट्य प्रस्तुति सौन्दर्यमयी बना सकेगा अन्यथा उसे नृत्य निर्देशन हेतु एक ऐसे नृत्य निर्देशक की आवश्यकता होगी जिसे नाट्य का ज्ञान हो।

इसी कारण आज नृत्य नाट्य के उचित, सटीक, सुन्दर व सौम्य समन्वय के साथ प्रस्तुतियाँ कम दिखती हैं। साथ ही संस्कृत भाषा के पौराणिक व ऐतिहासिक रूपक आज सामान्य दर्शकों को बोझिल करते हैं। अतः आवश्यकता है उसे रोचक बनाने की जिस हेतु नृत्य एक सक्षम और सुदृढ़ साधन है। यदि आज हम रूपकों का प्रयोग प्रस्तुत करते हैं, तो पूर्वरंग एवं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सम्पूर्ण रूपक प्रयोग में नृत्य के सुन्दरतम् संयोजन से प्रस्तुति ग्राह्य हो जाती है एवं दर्शक सरलता से कथानक से जुड़ सकते हैं।

सन्दर्भ :

1. Hindi Dasharoopak; 1-Shloka -7; Dr.Bholashankar Vyas; Chaukhamba Vidyabhavan Publication, Banaras; (2003)
2. Natyashastra of Bharatamuni- Vol-I, Chapter-4; Editor-Dr. K. Krișhnamurti, Oriental Institute, Vadodara (1992).
3. Ibid.
4. Bharatiya Natya Parampara evam AbhinayaDarpan;Shloka-10; Vachaspati Garola; Chaukhamba Surbharti Prakashan (2006)
5. Kalidas Granthavali; Malvikagnimitram; chapter -1, Shloka-4; Editor Prof.R.P.Divedi;Banaras Hindu university;(1976)
6. Hindi Dashroopak; 1-shloka -10; Dr. Bholashankar Vyas; Chaukhamba Vidyabhavan Publication,Banaras;(2003
7. Bharatiya Natya Parampara evam Abhinaya Darpan ; Shloka-15; Vachaspati Garola; Chaukhamba Surbharti Prakashan (2006)
8. Hindi Dashroopak;1-shloka -9; Dr.Bholashankar Vyas; Chaukhamba Vidyabhavan Publication, Banaras; (2003)
9. Bharatiya Natya Parampara evam Abhinaya Darpan ; Shloka- 16; Vachaspati Garola; Chaukhamba Surbharti Prakashan (2006)
10. Introduction of Bhasa Natakchakram; Oorubhangam; C.R. Devadhar; Motilal Banarasidass Publications(1987)
11. Introduction of Bhasa Natakchakram; Dootavakyam; C.R. Devadhar; Motilal Banarasidass Publications(1987)
12. Kalidas Granthavali; Malvikagnimitram; Chapter -1, Shloka-4; Editor Prof. R.P. Divedi; Banaras Hindu University;(1976)
13. Kalidas Granthavali; Malvikagnimitram; Chapter -2, Shloka-4; Editor Prof. R.P. Divedi; Banaras Hindu University;(1976)
14. Kalidas Granthavali; Vikramorvashiyam; Editor Prof. R.P. Divedi; Banaras Hindu University; (1976)
15. Kalidas Granthavali; Abhijyanshakuntalam; Editor Prof. R.P. Divedi; Banaras Hindu University; (1976)

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

जन चेतना का नया स्वरूप – लोक कलाओं का नया रूप

संसार की विभिन्न सभ्यताओं में भारतीय सभ्यता न केवल अनूठी है वरन् सबसे प्राचीन भी है। इस प्राचीनता के कारण हमारे देश का यह दायित्व बनता है कि यह अपनी अनूठी सभ्यता का गौरव, सौन्दर्य और इसकी ऐतिहासिक गरिमा को उच्च कोटि पर बनाये रखे। कह सकते हैं कि भारत ने अब तक यह दायित्व सरलता से निभाया है, क्योकि यहाँ की धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परम्पराएँ सम्पूर्ण विश्व में अतुलनीय हैं।

भारतीय सभ्यता का सबसे अनूठा पहलू है "अनेकता में एकता" जिससे हमारी सभ्यता को अन्य सभ्यताओं से बिल्कुल भिन्न सी सुगन्ध प्राप्त होती है। हम पूरे भारत में विभिन्न धर्मो की रीतियों और विश्वासों को जनसाधारण द्वारा वैचारिक, सामुदायिक और साम्प्रदायिक सामंजस्य के साथ निभाते हुए देख सकते हैं। किन्तु जब कलाओं की बात आती है तो ये सभी विभिन्न धर्म एकरूप हो जाते हैं क्योंकि कलाओं की कोई निश्चित सीमा रेखा और कोई साम्प्रदायिक बन्धन नहीं होता।

हमारे देश की कलाओं का कोष बहुत ही गहरा और विशाल है। किसी भी कला का मुख्य उद्धेश्य अपने दर्शकों का मनोरंजन कर उन्हें, भाव विभोर कर आनन्दित करना और और उस आनन्द द्वारा आत्मा का परमात्मा से मिलन करा कर शान्ति की अनुभूति कराना ही होता है। भारत के प्रत्येक प्रदेश की जड़ों में कई प्रकार की कलाएँ पारम्परिक, आध्यात्मिक और ऐतिहासिक रूप से समायी हुई हैं। इन कलाओं को पुनः ललित कलाओं, प्रदर्शनात्मक कलाओं, शिल्प कलाओं एवं अन्य प्रकारों में विभक्त किया जा सकता है।

ये कलाएँ उन प्रदेशों में बसने वाली विभिन्न जातियों, जनजातियों और समुदायों द्वारा पालन किये जाने वाली, उस स्थान के ऐतिहासिक, सामाजिक और धार्मिक परम्पराओं और निष्ठाओं का सच्चा चित्रण प्रस्तुत करती हैं। इन कलाओं के विभिन्न स्वरूपों में से एक प्रमुख स्वरूप है प्रदर्शनात्मक कलाओं का जिनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अन्तर्गत, गायन, वादन, नर्तन और नाट्य कलाएँ आती हैं। आज इन प्रदर्शनात्मक कलाओं को शास्त्रीय और लोक कलाओं की श्रेणी में विभाजित कर दिया गया है।

शास्त्रीय कलाएँ वे हैं जिन्हें परिवर्तित व परिशुद्ध करके कुछ विशिष्ट स्वरूप प्रदान कर दिया गया है तथा जन साधारण से जुड़ी कलाएँ, लोक कलाएँ कहलाती हैं। दोनों ही हमें विरासत में पीढ़ी दर पीढ़ी परम्परा से मिलती चली आ रही हैं और समाज के साथ ही विकसित व परिवर्तित होती रही हैं।

आचार्य भरत ने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में स्पष्ट रूप से परिशुद्ध कर नाटकीय रूप से प्रस्तुत होने वाली नगरीय कलाओं को नाट्यधर्मी व मानवीय सरलता व सहजता से प्रस्तुत होने वाली कलाओं को लोकधर्मी कहा है। दूसरी शताब्दी ईसापूर्व में रचित यह ग्रन्थ नाट्यशास्त्र भारतीय कलाओं का धर्मग्रन्थ माना जाता है। यह ग्रन्थ इतना महत्वपूर्ण है कि भारत की सभी कलाएँ नाट्यशास्त्र में वर्णित सिद्धान्तों को किसी न किसी रूप में अपनाती हैं।

आज जनसाधारण किसी भी शास्त्रीय तत्त्वों से सम्बन्धित कलाओं को नाट्यधर्मी और लौकिक तत्त्वों से सम्बन्धित कलाओं को लोकधर्मी कहना प्रारम्भ कर चुके हैं। यह धारणा पूर्णतया सही तो नहीं है पर आज यही सबसे अधिक प्रचलित है।[1]

लोक कलाएँ, जन चेतना का नया आधार :–

लोक कलाएँ पूरे भारत में प्रसिद्ध हैं क्योंकि ये सहज, स्वाभाविक, समझने में सरल और मधुर हैं तथा जीवन के वास्तविक सुख दुख को स्वस्थ, कलात्मक और रोचक रूप में प्रस्तुत करती हैं। इन लोक कलाओं में से कुछ ईश्वरीय आराधना से जुड़ी हैं तो कुछ सामाजिक मनोरंजन के रूप में हैं, कुछ युद्ध कलाओं के रूप में हैं तो कुछ चिकित्सा रीतियों के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं।

भारत की प्राचीन सभ्यता का प्रतीक बनने और मनोरंजन करने के अतिरिक्त भी आज इन पारम्परिक लोक कलाओं को एक अन्य अति महत्वपूर्ण कार्य सौंपा जाने लगा है। आज ये भारत के पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रों में जन साधारण का ज्ञानवर्धन कर उन्हें जागरुक कर उन पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रों को विकसित करने का कार्य भी कर रहीं हैं। भारत के कई राज्य वैसे तो अपनी परम्पराओं में बहुत विकसित हैं पर कई बातों में अभी भी बहुत संकुचित सोच रखते हैं। इससे अविकसित ग्रामीण क्षेत्रों की संख्या बढ़ती है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

अरुचि और आलस्य के कारण शिक्षा की निम्न दरें, बाल विवाह, सती प्रथा, भ्रूण हत्या को बढ़ावा देती मान्यताएँ, कुपोषण के कारण शिशु मृत्यु, अज्ञानता व असुविधाओं के कारण प्रसव काल में मातृ मृत्यु, परिवार नियोजन की ओर से लापरवाही व अन्य स्वास्थ्य सम्बन्धी कठिनाइयाँ इन क्षेत्रों के विकास में सरकार के सामने सबसे बड़ी बाधा बन कर खड़ी हैं।

सरकारी संस्थाएँ, समाज सेवी, स्वास्थ्य कर्मी, चिकित्सक आदि इन क्षेत्रों में जाकर लोगों को जागरुक करने का प्रयास कर रहे हैं परन्तु उन्हें कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

सबसे पहली कठिनाई है भाषा की क्योंकि ऐसे सम्वेदनशील विषयों को एक बिल्कुल ही अनभिज्ञ व्यक्ति को सरलता से समझा पाना बहुत ही कठिन कार्य है साथ ही यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि गलत रूप से प्रस्तुत होने पर ये विषय उस ग्राम के लोगों की धार्मिक व सामाजिक परम्पराओं को ठेस पहुँचा सकते हैं। इसके अतिरिक्त इन ग्रामीण क्षेत्रों के अधिकांश लोग किसानवर्ग के होते हैं और दिन भर की थका देने वाली खेतीबाड़ी करने के बाद इनके पास सामाजिक कार्यकर्ताओं के घंटे – दो घंटे का भाषण सुनने और दिखाई जा रही अरुचिकर तस्वीरों को देखने का सब्र नहीं होता जो न तो उन्हें रोचक लगता है और न ही समझ में आता है। इस कारण विकास की गति प्रायः धीमी ही रहती है।

"यहीं से उपजती है लोक कलाओं को जन चेतना का आधार बनाने की विचार धारा।"

लोक कलाओं को जन चेतना का आधार बना कर नवीन नैतिक सिद्धान्तों और सन्देशों को मनोरंजन के साथ लोगों तक पहुँचाया जाता है। लोक कलाओं में क्षेत्रीय भाषा का प्रयोग होने के कारण ये समझने में सरल होती है। ये कलाएँ इतनी सहज हैं कि नये विषय इनमें सरलता से जोड़े जा सकते हैं। दर्शकों तक इसकी पहुँच भले ही छोटे स्तर पर हो पर इनका प्रभाव अधिक गहरा होता है क्योंकि लोक कलाओं के प्रदर्शन के दौरान बीच बीच में दर्शकों को भी प्रश्नोत्तर आदि के द्वारा प्रस्तुति से जोड़ा जाता है जिससे प्रस्तुत विषय उन्हें सरलता से समझ आ जाता है।

नाटकीय और काव्यात्मक होने के कारण ये हमारे अन्तःमन के अपने विचारों और भावों को प्रस्तुत करने की हमारी इच्छा को भी पूरा करते हैं।[2] किसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भी आधुनिक संचार माध्यम से अधिक गहरी पहुँच इन लोक कलाओं की है।[3] लोक कलाओं द्वारा जन चेतना अन्य माध्यमों की अपेक्षा कम खर्च में हो जाती है और सरलता से मिल भी जाती हैं अतः ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक प्रचलित होती हैं।[4]

इनकी त्वरित काल्पनिकता, दर्शकों को सम्मिलित करने की विधि इन्हें एक सशक्त और प्रभावशाली संचार माध्यम के रूप में स्थापित करती हैं। किन्तु जहाँ ये लोक कलाएँ एक अच्छा संचार माध्यम बनती हैं वहीं यह भी ध्यान रखना आवश्यक होता है कि इनके माध्यम से नक्सलवाद, आतंकवाद जैसे कोई गलत नकारात्मक सन्देश लोगों तक न पहुँचे नहीं तो प्रगति के स्थान पर विपरीत परिणाम सामने आयेगा और विकास की गति और अधिक बाधित हो जायेगी।

विभिन्न संस्थानों का योगदान :–

ये सभी विभिन्न लोक कलाएँ हमारे देश की माटी से और साथ ही लोगों की धार्मिक आस्थाओं और परम्पराओं से जुड़ी हैं।[5] अतः इनमें से किसी भी लोक कला का प्रयोग सुनियोजित रूप से जन चेतना और शिक्षा माध्यम के रूप में किया जा सकता है केवल मनोरंजन और शिक्षाप्रद बातों के बीच सही सामंजस्य बनाये रखना आवश्यक होता है। ये बहुत ही सहज रूप से दर्शकों से जुड सकते हैं और लेखकों की सही और दमदार लेखन शैली से जन मानस के विचारों को प्रभावित कर विकास के लिये आवश्यक विचारों को सभी लोगों में फैला सकते हैं।[6]

इसी तथ्य को आधार बना कर सिफ्सा (State Innovations in Family Planning Services Agency) एक सरकारी संस्था, ने उत्तर प्रदेश में कुछ समाज सेवी संस्थाओं और ग्राम्य प्रधानों की सहायता से अद्भुत रूप से बिरहा, नौटंकी कव्वाली, जादू और कठपुतली के माध्यम से परिवार नियोजन के विचारो को उत्तर प्रदेश के ग्रामीण जन साधारण तक पहुँचाया है।[7]

उत्तर प्रदेश में लोक कलाओं की अमूल्य धरोहर है, जिनमें प्रदर्शानत्मक कलाएँ, ललित कलाएँ और शिल्प आदि जैसे बिरहा, रासलीला, रामलीला, नौटंकी, कजरी, आल्हा, कव्वाली, रसिया, चैती, कथा वाचन, कठपुतली, बुनाई, कुम्हारी इत्यादि कलाएँ सम्मिलित हैं, जो सैकड़ों वर्षों से उत्तर प्रदेश के इतिहास, सौन्दर्य, संस्कृति और परम्पराओं का बखान करती चली आ रही हैं। ये सभी कला रूप समाज में विकास के नवीन विचारों को सम्प्रेषित करने हेतु प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सिफ्सा ने ब्रज लोक माधुरी संस्था के साथ जुड़ कर लोक कलाकारों को इन नये विषयों और विषयों को अपनी कलाओं में संयोजित करने और इनकी रचनात्मक प्रस्तुति देने की प्रक्रिया का प्रशिक्षण देती है।[8] 1999 से 2003 के बीच इन्होंने चार प्रशिक्षण शिविर चलाये हैं जिसमें 100 से भी अधिक नौटंकी, बिरहा व कव्वाली की टोलियों को विकास सम्बन्धी नवीन विषयों के प्रस्तुतिकरण का प्रशिक्षण दिया गया है और नये विषयों को इनके द्वारा सफलतापूर्वक प्रस्तुत कराया भी गया है।

ये नवीन रचनाएँ मुख्यतः ऐसी कथाओं पर आधारित होती हैं जो मनोरंजन के तत्त्वों में श्रेष्ठ हो और जिनमें परिवार नियोजन और स्वास्थ्य सम्बन्धी सन्देशों को सरलता से जोड़ा जा सके। प्रयत्न किया जाता है कि इन कलाकारों को अपनी कल्पना शक्ति और अपनी लोक कथाएँ दर्शाने का पूरा अवसर भी मिले।[9]

इससे पूर्व, केरल कला साहित्य परिषद, एक समाज सेवी संस्था ने 1980–81 में केरल में विज्ञान यात्रा का आयोजन कर विज्ञान के नवीन विचारों को प्रचारित किया जिसमें विभिन्न लोक कलाओं को माध्यम बनाया गया।[10] इसमें मुख्य उद्येश्य शिक्षा, स्वास्थ्य, पर्यावरण आदि के विचारों को प्रचारित कर लोकप्रिय बनाना था। इस संस्था के इस प्रयास से प्रेरणा लेकर कई अन्य संस्थाओं ने भी देश भर में लोक कलाओं के माध्यम से जन चेतना का कार्य प्रारम्भ किया।

चिपको और अपिको आन्दोलन पर्यावरण बचाने के लिये प्रेरित कर रहे हैं।[11] इनके द्वारा प्रयुक्त लोक गीत इतने सरल हैं कि बच्चों को आसानी से याद हो गये और वो दिन भर इन्हें गाते फिरते रहे। सही और गलत के बीच का अन्तर समझाने के लिये भगवत् गीता आदि ग्रन्थों को भी रोचक रूप सें प्रस्तुत किया गया।

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षा मण्डल ने देवकिशनपुर गाँव में नाट्यकर्मी श्री रवि चतुर्वेदी की सहायता से छूआछूत, स्वास्थ्य सम्बन्धी कठिनाइयों और उनके निराकारण तथा गाँव के आपसी क्लेशों को दूर करने के लिये महाभारत और रामायण को उनसे जोड़ते हुए नाटक द्वारा प्रस्तुत किया और लोगों में जागरुकता फैलायी।

जयपुर जिले के गरुडवासी गाँव के लोग बाढ़ से पीड़ित थे और उनका मानना था कि ये त्रासदी सरकार के कारण आई। उन्हें लोक नाट्यों के मंचन से

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समझाया गया कि यह एक प्राकृतिक आपदा है। जन साधारण का क्रोध भी इससे शान्त हुआ और जीवन के प्रति उनका रुझान फिर बढ़ा।[12]

निष्कर्ष :–

ऊपर वर्णित उदाहरणों से हम यह समझ सकते हैं कि लोक कलाओं को जन चेतना स्वरूपों की भांति प्रयुक्त करने हेतु सटीक योजनाओं की आवश्यकता होती है। क्षेत्र में प्रचलित लोक शैली और भाषा को आवश्यक रूप से ध्यान में रखते हुए और किस स्थान पर कौन सी लोक कला अधिक लोकप्रिय है यह समझते हुए लोक कलाओं का चयन करना चाहिये। अन्यथा यदि हम तमिलनाडु की लोक शैली को आसाम में प्रस्तुत करेंग तो वह किसी को भी समझ नहीं आयेगी और प्रयोग असफल हो जायेगा।

उदाहरण के रूप में यदि देखें तो उत्तर प्रदेश में बिरहा, कव्वाली, नौटंकी व अन्य कई प्रचलित हैं, आल्हा, कर्मा व अन्य बुन्देलखण्ड में प्रसिद्ध हैं, पण्डवानी, नाचा इर्त्यादि छत्तीसगढ़ में, महाराष्ट्र में तमाशा, कर्नाटक में यक्षगान, गुजरात में भवाई, असम में अंकिया नाट एवं इसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी ऐसी ही विभिन्न लोक कलाएँ लोकप्रिय हैं। अतः इन स्थानों पर लोकप्रिय होने के कारण यही कलाएँ प्रस्तुति का सशक्त माध्यम बन पायेंगी।

तत्पश्चात्, आवश्यकता के अनुरूप कथानक का निर्माण होना चाहिये और सभी कलाकारों के साथ इनका अभ्यास भी आवश्यक रूप से होना चाहिये। तब ऐसे ग्रामीण क्षेत्रों का चुनाव करना चाहिये ज़हाँ इस प्रस्तुति का समग्र प्रभाव सबसे अधिक हो और उस क्षेत्र के समाज सेवी कार्यकर्ताओं तथा ग्राम अधिकारियों से सम्पर्क कर उनसे प्रचार प्रसार व अन्य सुविधाओं की सहायता प्राप्त करनी चाहिये।

हमें सिफ्सा, केरल कला साहित्य परिषद, चिपको एवं अपिको आन्दोलन और राजस्थान प्रौढ़ शिक्षा मण्डल के समाज में परिवर्तन लाने के लिये और हम, जन साधारण को जागरुक करने के लिये किये गये इन योजनाबद्ध प्रयासों से कुछ सीखना चहिये और प्रेरणा लेनी चाहिये।

कलाओं के इन प्रयोगों से न केवल ग्रामीण अंचलों का विकास होगा अपितु, इन लोक कलाओं की विषय वस्तु भी समसामयिक और पारम्परिक कथानकों से समृद्ध हो सकेगी जिससे कि इनके कभी भी लुप्त होने की सम्भावना ही नहीं रहेगी, वरन् आज के आधुनिक समाज में ये लोक कलाएँ एक नवीन स्वरूप को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्त कर सकेंगी जिससे कि संस्कृति के प्राचीन अध्याय में एक नवीन अध्याय का समावेश होगा।

आज हम इस बात से चिन्तित और भयभीत रहते हैं कि हमारी लोक संस्कृति और पारम्परिक लोक कलाएँ दूरदर्शन और सिनेमा के बढ़ते प्रभाव के कारण लुप्त हो रही हैं। लोक कलाओं का जन चेतन माध्यम के रूप में प्रयोग जहाँ एक ओर ग्रामीण अंचलों का विकास करेगा वहीं दूसरी ओर आधुनिक बाज़ारवाद के कारण लोक कलाओं के अस्तित्व को खोने का भय भी हमारे मन से चला जायेगा।

इस द्विरूपीय संचार से इतिहास, संस्कृति और परम्पराओं का रक्षण भी होगा और लोक कलाओं के इस नये रूप से ग्रामीण अंचल की माटी से जुड़े नौजवानों को जीवन यापन का एक और साधन भी मिल पायेगा क्योंकि जो लोक कलाओं को सही रूप में जानते हों वही इन्हें सही रूप में प्रस्तुत भी कर पायेंगे।

सन्दर्भ :

1. Natyashastra of Bharatamuni- Vol-I, Chapter-4; Editor-Dr. K. Krishnamurti,
   Oriental Institute, Vadodara (1992).
2. (http://www.sikhspectrum.com/112007/folkarts.htm : FOLK ARTS AS MASS COMMUNICATION MEDIA – C.S.Sreekumar)
3. Ibid.
4. IbId.
5. Ibid.
6. http://devnautanki.com/files/SIFPSA_report.pdf
7. Ibid.
8. Ibid.
9. Ibid.
10. http://www.sikhspectrum.com/112007/folkarts.htm
11. Ibid.
12. Ibid.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नृत्य
एक प्राचीन आरोग्यकर अनुष्ठान - एक आधुनिक चिकित्सकीय पद्धति

"नृत्यांगना का शरीर आत्मा का उज्वल प्रतिबिम्ब मात्र है"

—इसाडोरा डंकन (अमरीकि नृत्यांगना)

"नृत्य शरीर की अन्तर्रात्मा की छिपी हुई वाणी है"

— मार्था ग्राहम (अमरीकि नृत्यांगना)

हमारे संसार ने कई सभ्यताओं के उत्थान और पतन को देखा है। इन सभी सभ्यताओं की परम्पराएँ, संस्कृति कई रूपों में भिन्न रही हैं और इनके अपने अपने विशिष्ट मूल्य भी रहे हैं। किन्तु फिर भी कुछ ऐसा अवश्य है जो इन सभी सभ्यताओं में एक समान है और जो इन सभी को एक ही धागे में पिरोता है। यह समान तत्त्व है कला। विभिन्न प्रकार की कलाएँ एक ऐसा तत्त्व हैं जो अपने मन के भावों को, संसार में हो रही घटनाओं को व्यक्त करने का सबसे सरल माध्यम हैं।

अतः संसार की विभिन्न संस्कृतियाँ, कलाओं के उल्लेख के बिना अधूरी मानी जाती हैं।

नृत्य, जो कलाओं का एक अभिन्न अंग है, कई बार सम्पूर्ण कला स्वरूप भी कहा जाता है। यह इस कारण से कहा जाता है क्योंकि नृत्य में बुद्धिमत्ता, आध्यात्मिकता, खोज और स्वच्छन्द सहजता के मिश्रण के साथ शरीर द्वारा कला का निर्माण होता है।[1] प्राचीन काल से ही नृत्य न केवल जनसामान्य के विभिन्न भावों को प्रस्तुत करता है वरन् आनन्ददायी और उत्सवादि समारोहों में मानसिक शान्ति और मनोरंजन हेतु भी प्रस्तुत किया गया।

यही नहीं, नृत्य ने आरोग्यकर अनुष्ठानों के एक अंग के रूप में भी सिद्धता प्राप्त की है। प्राचीन काल से ही नृत्य और नृत्यात्मक कलाओं को, आरोग्य प्रदान करने वाले गुणों से परिपूर्ण माना जाता रहा है। प्राचीन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सभ्यताओं में नृत्य, धर्म, संगीत और चिकित्सा पद्धति आपस में जुड़े हुए पाये जाते हैं; नृत्य तान्त्रिक क्रियाओं का एक अभिन्न अंग रहे हैं।[2]

नृत्य, एक आरोग्यकर अनुष्ठान :-

जन्म और मृत्यु जीवन का अटूट अंग है। किन्तु एक जीवनकाल में मनुष्य को कई अनुभवों के साथ जीवन व्यतीत करना पड़ता है, जिनमें से कुछ प्रगति की ओर ले जाते हैं तो कुछ अन्य बाधा उत्पन्न करते हैं। ऐसा ही जीवन का एक अनुभव है स्वास्थ्य का क्षीण होना। पुरातन काल में ज़ब अधिकांश रोगों के लिये उपचार नहीं हुआ करता था, तब जनसामान्य सोचा करते थे कि यह कार्य किसी दुष्ट आत्मा का है और उपचार हेतु तान्त्रिकों के पास जाते थे। ये तान्त्रिक तब किसी प्रकार का आरोग्यकर अनुष्ठान करते थे जिससे कभी कभी रोगी स्वस्थ भी हो जाते थे तो कभी नहीं भी हो पाते थे।

ऐसे अनुष्ठान लगभग प्रायः ही नृत्यात्मक क्रियाओं के साथ प्रस्तुत किये जाते थे। सम्पूर्ण विश्व में विभिन्न सभ्यताएँ कई ऐसे नृत्यों से परिपूर्ण हैं जो आरोग्यकर अनुष्ठान के रूप में देखे जाते हैं। यूरोप के मध्यकालीन युग में लोग ब्यूबोनिक महामारी से बचने के लिये नृत्य किया करते थे। मूल अमरीकि कबीलों के चिकित्सा प्रदान करने वाले व्यक्ति प्रायः सभी आरोग्यकर अनुष्ठानों में नृत्य का प्रयोग किया करते थे। अफ्रीका में युद्ध हेतु नौजवानों को संयम और अनुशासन का प्रशिक्षण देने हेतु युद्धात्मक नृत्य का प्रयोग किया जाता था।[3]

माना जाता है कि इटली का उन्मुक्त और परित्यक्त टैरेन्टेला नृत्य प्राणघातक टैरेन्टुला मकड़ी के काटने से फैले विष के उपचार हेतु प्रयोग किया जाता था। श्रीलंका के यकुन नाटिमा और कोलम नाटिमा आरोग्यकर नृत्य हैं जिन्हें असुरों द्वारा फैलाये गये रोगों से ग्रसित मनुष्यों के उपचार हेतु प्रस्तुत किया जाता था। भारत में भी कर्नाटक के भूतद कोल्ल अथवा भूतद कुणिता आदि कई नृत्य मनुष्यों पर से दुष्प्रभावों को दूर करने के लिये किये जाते थे।

इस प्रकार हम सरलता से कह सकते हैं कि सम्पूर्ण विश्व में नृत्य को आरोग्यकर अनुष्ठान के रूप में प्रस्तुत किया जाता रहा है। समय के साथ इनमें से कई नृत्य लुप्त होते चले गये अथवा कभी कभी किसी विशेष उत्सव में ही किये जाते थे। जनसामान्य को धीरे धीरे समझ में आने लगा था कि रोग, दुष्ट

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आत्माओं अथवा राक्षसों के कारण नहीं फैलते अतएव वे तान्त्रिकों के स्थान पर चिकित्सकों के पास उपचार हेतु जाने लगे।

आज आधुनिक समय में विज्ञान और आधुनिक चिकित्सा पद्धति के विकसित होने के कारण ये सभी आरोग्यकर नृत्य, अनुष्ठान के रूप में नहीं वरन् मनोरंजन के रूप में अधिक प्रस्तुत किये जाते हैं। किन्तु फिर भी नृत्य द्वारा आरोग्य प्रदान करने के यह विचार आज के आधुनिक विचारकों के मन से दूर नहीं हुए हैं।

नृत्य, एक आधुनिक चिकित्सकीय पद्धति :–

आधुनिक समाज में नृत्य और शारीरिक क्रियात्मक चिकित्सा पद्धति या **डांस मूवमेंट थेरेपी (डी एम टी)**, का उद्भव पारम्परिक आरोग्यकर नृत्य रूपों की अवधारणा से ही उत्पन्न हुआ है। नृत्य में आरोग्यात्मक क्षमता है, यह समझते हुए नृत्य चिकित्सक, नृत्य और शारीरिक क्रियाओं की शक्ति द्वारा किसी व्यक्ति के स्वस्थ होने और प्रगति करने की स्वाभाविक क्षमता को बढ़ाने की चेष्टा करते हैं।[4] कभी कभी कुछ भावनात्मक उद्वेग किसी व्यक्ति की मनः स्थिति को विचलित कर अपने शरीर से उसके नियंत्रण को कम कर सकते हैं और वहीं कुछ अन्य इस नियंत्रण को पुनः स्थापित कर देते हैं।

ये सरलता से कहा जा सकता है कि किसी व्यक्ति की शारीरिक क्रियाएँ, उसकी विचारात्मक प्रक्रिया और उसके मन के भावों का अन्तःसम्बन्ध अवश्य होता है और इस कारण व्यक्ति की शारीरिक स्थिति उसके मानसिक एवं भावनात्मक परिस्थितियों को सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही रूपों में प्रभावित कर सकती हैं। नृत्य और शारीरिक क्रियात्मक चिकित्सा पद्धति (डी एम टी), नृत्य चिकित्सा पद्धति के नाम से प्रचलित है। इस नृत्य चिकित्सा पद्धति का मुख्य उद्देश्य है व्यक्ति के शरीर में आरोग्यात्मक सन्तुलन और पूर्णता को उत्पन्न करना।

नृत्य का चिकित्सा पद्धति के रूप में औपचारिक प्रयोग 1942 में अमरीका के मैरियन चेज़ (एक नृत्यांगना) ने किया जो, सेंट एलिज़ाबेथ अस्पताल वाशिंगटन डी सी में कार्य करती थीं। वहाँ के मनोचिकित्सकों ने पाया कि उनकी नृत्य कक्षाओं में सम्मिलित होने के पश्चात् अस्पताल में भर्ती मनोरोगियों की मानसिक स्थिति में भी सुधार होने लगा। लगभग इसी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समयकाल में ट्रूडी स्कूप, एक सुविख्यात नर्तकी और मूकाभिनय कलाकारा, कैलिफोर्निया के एक राजकीय अस्पताल में रोगियों के साथ कार्य कर रही थीं।[5]

यह "नृत्य चिकित्सा पद्धति" का जन्म था।

यह सुनिश्चित नहीं है कि किसी एक प्रकार का नृत्य ही उपचार हेतु प्रयोग किया जा सकता है, वरन् आवश्यकतानुसार कोई भी नृत्य चिकित्सा हेतु प्रयुक्त किया जा सकता है। नृत्य चिकित्सा पद्धति के प्रमुख उद्देश्य हैं भावनात्मक रूप से विचलित किसी व्यक्ति के आत्मविश्वास को बढ़ा कर उसके स्वयं के वास्तविक व्यक्तित्त्व को समक्ष लाने का प्रयत्न करना।

नृत्य चिकित्सा पद्धति का मुख्य सिद्धान्त यह है कि, प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वाभाविक व्यक्तित्व के अनुरूप क्रियाएँ करता है और ये शारीरिक क्रियाएँ उसके भावनात्मक, बौद्धिक और शारीरिक स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं। लयात्मक और तालात्मक रूप से की गई शारीरिक क्रियाएँ न केवल शरीर को ऊर्जा प्रदान करती हैं वरन् शरीर की मांसपेशियों को विश्राम देकर विचलित मन को शान्त करती हैं।

समय के साथ नृत्य चिकित्सा पद्धति में भी प्रगति हुई, किन्तु वे प्रमुख उद्देश्य जिनको आधार बनाकर इस पद्धति का निर्माण हुआ था, उनमें परिवर्तन नहीं हुआ। इन प्रमुख उद्देश्यों को आधार बनाते हुए आज, प्रायः सभी नृत्य चिकित्सकीय सत्र निर्धारित किये जाते हैं जिन्हें चार चरणों में विभाजित किया जाता है –

- प्रारम्भिक तैयारी (Preparation) – प्रारम्भिक व्यायाम चरण जिसके द्वारा शरीर की सुरक्षा स्थिति का निर्माण किया जाता है।[6]
- ऊष्मायन (Incubation) – एक व्यक्ति को विश्राम देता है और उसके सचेत मन को शान्त करता है जिससे कि शारीरिक क्रियाएँ प्रतीकात्मक हो जाती हैं।[6]
- प्रदीपन (Illumination) – चिकित्सा के निष्कर्ष स्पष्ट हो जाते हैं जो सकरात्मक अथवा नकारात्मक दोनों हो सकते हैं।[6]
- मूल्यांकन (Evaluation) – रोगी के साथ प्रक्रिया के महत्त्व की चर्चा की जाती है, और इसके पश्चात् रोगी को चिकित्सा सत्रों को समाप्त किये जाने हेतु तैयार किया जाता है।[6]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नृत्य चिकित्सा पद्धति कई प्रकार के गम्भीर रोगों और विकारों जैसे पार्किन्सन्स रोग, ऑटिज़्म, मन्दबुद्धित्व, बधिर और कम सुनने वाले लोगों, नेत्रहीन और कम दृष्टि वाले लोगों, शरीरिक रूप से अक्षम लोगों, खानपान में विकार और सीखने में क्षीणता आदि विकारों को सुधार कर आरोग्यता प्रदान करने में अत्यन्त सक्षम है।[6] नृत्य चिकित्सा पद्धति आज सम्पूर्ण विश्व में प्रचलित हो रही है किन्तु भारत में यह अभी इतनी लोकप्रिय नहीं है पर सम्भावना है कि शीघ्र ही यह पद्धति भारत में भी प्रचलित हो जायेगी क्योंकि कई नर्तक, नृत्यांगनाएँ और चिकित्सक इसे आगे प्रगतिशील बनाने के लिये उद्यत हैं।

भारत में नृत्य चिकित्सा पद्धति :–

कथक और समकालीन नृत्य के सुविख्यात नर्तक **अस्ताद देबू** ने कई बार बधिर कलाकारों के साथ कार्य किया है और उनके साथ अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर भी कई नृत्य कार्यक्रम प्रस्तुत किये हैं जिससे उन बधिर कलाकारों के आत्मविश्वास को प्रगति मिली है।

बंगलूरु की भरतनाट्यम् नृत्यांगना और नृत्य चिकित्सक **त्रिपुरा कश्यप,** नेत्रहीन और कम दृष्टि वाले व्यक्तियों को जनजातीय नृत्य कर्मा का प्रशिक्षण देती हैं जिससे कि उनमें समूह में कार्य करने की और स्पर्श कर पहचानने की क्षमता का विकास हो सके। साथ ही बधिर व्यक्तियों को वे शास्त्रीय नृत्य की हस्त मुद्राओं का प्रशिक्षण देती हैं जिससे कि वे इनकी सहायता से वाक्यों और कथाओं का निर्माण कर सकें और उनका संचार कौशल ही नहीं वरन् उनकी कल्पनाशीलता भी बढ़े।

शास्त्रीय नृत्य और नाट्य कलाकार **सैयद सलाउद्दीन पाशा,** विशिष्ट आवश्यकताओं वाले बच्चों के साथ कार्य करते हैं। उनकी नृत्य नाटिका रामायण में विभिन्न विकलांगताओं से ग्रसित बच्चों ने प्रतिभागिता की है, विदेशों में प्रस्तुत इस प्रदर्शन ने सभी स्थानों पर अन्तर्राष्ट्रीय दर्शकों को भावविभोर कर दिया।[7]

अंजिका मणिपुरी नृत्य समूह की **श्रीमति प्रीति पटेल,** सेरेब्रल पाल्से (मस्तिष्क पक्षाघात) रोग से ग्रसित बच्चों की सहायता नृत्य द्वारा उनके विकास हेतु करती हैं।[8]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सामाजिक चिकित्सकीय सलाहकार डॉ. कंचन गुर्टु कहती हैं कि "मुझे एक ऐसी स्त्री के विषय में ज्ञान है जो बीस वर्षों के दुखभरे वैवाहिक जीवन के पश्चात् अपने पति से अलग हुई और केवल नृत्य संगीत के प्रति उसके लगाव के कारण ही उस मानसिक रूप से पीड़ित स्त्री को मानसिक और भावनात्मक रूप से पुनः मन की शान्ति प्राप्त हो पाई। नृत्य एक शारीरिक और मानसिक व्यायाम है जो हमें कई प्रकार की व्याधियों से दूर रख सकता है।"[9]

भरतनाट्यम् नृत्यांगना, मेरी माता श्रीमति माला होम्बल की नृत्य संस्था में आ कर नृत्य सीखने वाली कई स्त्रियों का कहना है कि नृत्य के द्वारा उन्हें प्रजनन पश्चात् और बढ़ती उम्र के कारण हो रही परेशानियों जैसे पीठ दर्द, घुटनों के दर्द से राहत मिली है और उनका शारीरिक भार भी कम हुआ है। मेरी माता ने देवा सेंटर, वाराणसी में पढ़ने वाले कुछ मन्दबुद्धि बच्चों के साथ भी कार्य किया है। उन्हें कथाओं और गीतों पर सरल नृत्य क्रियाएँ और हस्त मुद्राओं का प्रशिक्षण देने से, इन बच्चों के माता पिता, अन्य शिक्षकों और मेरी माता ने पाया कि बच्चों के अन्य विषयों को सीखने की क्षमता में हीं नहीं वरन् उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व में विकास हुआ।

नृत्य का प्रभाव :–

नृत्य का सभी पर सदा अच्छा प्रभाव ही पड़ता है। केवल किसी व्याधि अथवा विकलांगता से ग्रसित व्यक्ति ही नहीं वरन् स्वस्थ और निरोगी व्यक्ति भी नृत्य कर उसके अच्छे प्रभावों को ग्रहण कर सकते हैं। शारीरिक क्रियाओं द्वारा अभिव्यक्ति कर पाने के कारण शर्मीले बच्चे अपने संकोची स्वभाव को दूर कर पाते हैं वहीं, नृत्य करने हेतु आवश्यक अनुशासन के कारण उधमी बच्चे अनुशासित भी हो जाते हैं।

ऐसे बच्चे कोई भी शिक्षा अधिक सरलता से इसलिये ग्रहण कर पाते हैं क्योंकि उन्हें नृत्य के रूप में अपने भीतर की अतिरिक्त ऊर्जा को बाहर निकालने का एक साधन भी मिल जाता है और नृत्य के माध्यम से वे उनकी अपनी कल्पनाओं को पंख भी लगा सकते हैं। इससे वे शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक, बौद्धिक और आध्यात्मिक स्तर पर शक्तिशाली बनते हैं।

मेरी स्वर्गीय बुआ कु. कादम्बरी होम्बल, भी एक मंदबुद्धि कन्या थीं, किन्तु नृत्य ने उन्हें एक ऐसी ऊर्जा और आत्मविश्वास से भर दिया था कि वे

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सभी नृत्य रचनाओं की प्रत्येक क्रियाओं को पूर्ण रूप से स्मरण रख पाती थीं, उन्हें बिना किसी त्रुटि के प्रस्तुत करती थीं और मंच पर अन्य बच्चों के साथ नृत्य करते समय कोई यह नहीं कह सकता था कि वे अन्य बच्चों से कुछ भिन्न हैं। नृत्य ने उनके जीवन काल को भी वृद्धि दी और अपने अन्तिम समय से कुछ समय पूर्व तक भी वे ऐसे ही अन्य बच्चों की तुलना में चिकित्सकों के विचार से भी अधिक स्वस्थ रहीं।

नृत्य से दिमाग का विकास उच्च स्तर तक हो पाता है। नृत्य अथवा अन्य कोई भी शास्त्रीय कला बच्चों के व्यक्तिगत विकास को विस्तार देती हैं, उनके जन्म लेने से पूर्व भी। यह सिद्ध हो चुका है कि यदि कोई गर्भधारण की हुई स्त्री शास्त्रीय कार्यक्रम देखती अथवा सुनती है तो वह एक अधिक स्वस्थ शिशु को जन्म देगी। कलाओं से दिमाग के विकास में सहायता होती है और दिमाग का दाहिनी भाग जो सामान्यतया हमारी रचनात्मकता और भावनात्मकता को नियन्त्रित करता है, तीव्रता से कार्य करना प्रारम्भ करता है।

नृत्य करते समय एक व्यक्ति को ताल, भाव, अपनी सूझबूझ और नृत्य के लिये प्राप्त स्थान के मध्य उचित समन्वय बनाना पड़ता है जिससे कि ध्यान शक्ति, स्मरण शक्ति और स्थिरता जैसी मानसिक स्थितियों में प्रगति होती है। सभी तन्त्रियाँ और मांस पेशियाँ किसी एक क्रिया को प्रस्तुत करने की ओर केंद्रित की जाती हैं जिस कारण व्यक्ति के हृदय, फेफड़े और चयापचय को स्वस्थ रखती हैं।

नृत्य हमें अपनी उलझनों व चिन्ताओं को भुलाने देता है। सूक्ष्म लय की पकड़ रख पाने के कारण हमारी सुनने की क्षमता बढ़ती है और सूक्ष्मतम् अभिनय और भावों की प्रस्तुति हमें अन्यों से अधिक एक सहज और सहृदयी व्यक्ति बनाती है। समग्र रूप से देखें तो नृत्य न केवल हमें आरोग्य प्रदान करता है अपितु हमारे अच्छे व्यक्तित्व का निर्माण और विकास करता है जिससे एक सभ्य सुस्कृत मनुष्य और अन्ततः एक सभ्य सुसस्कृत समाज का निर्माण हो सके।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्दर्भ :

1. http://www.worldwidehealth.com/health-article-Dance-Theraoy.html
2. http://www.cihs.edu/Event/Dance%20therapy.pdf
3. http://www.lifepositive.com/Mind/Performing_Arts/Dance_of_Well-being.asp
4. http://www.cihs.edu/Event/Dance%20therapy.pdf
5. http://www.lifepositive.com/Mind/Performing_Arts/Dance_of_Well-being.asp
6. http://en.wikipedia.org/wiki/Dance_therapy
7. Ibid.
8. http://www.lifepositive.com/Mind/Performing_Arts/Dance_of_Well-being.asp
9. Ibid.
10. Ibid.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रियाज़ - अतीत के समर्पण और भक्ति से वर्तमान के मात्र अभ्यास तक की यात्रा

रियाज़, एक ऐसा पारिभाषिक शब्द है जिसे हम सरलता से परिभाषित कर सकते हैं किन्तु तब भी यह सदा अपरिभाषित ही रहता है। आज जो भी इसकी परिभाषा करेगा अथवा इसका वर्णन करेगा, वह यही कहेगाा कि संगीत अर्थात् गायन, वादन व नर्तन क्रियाओं के प्रायोगिक पक्ष का अभ्यास ही रियाज़ है। सामान्य और सरल भाषा में भी रियाज़ शब्द का अर्थ अभ्यास ही होगा।

किन्तु क्या यह केवल अभ्यास मात्र है? क्या संगीत के रियाज़ में और प्रतिदिन के सीखे दैनिक रूप से सीखे गये पाठ्यक्रम को गृहकार्य के रूप में अभ्यास करने के मध्य क़ोई अन्तर नहीं है?

हाँ, रियाज़ और अभ्यास के मध्य में बहुत ही विशाल अन्तर है।

यदि कुछेक विद्यार्थियों को छोड़ दिया जाये तो सामान्य तौर पर आज के सभी विद्यार्थी, शिक्षक अथवा गुरू के आदेशों के अनुसार प्रतिदिन के पाठ्यक्रम को केवल दोहराते हैं और कई बार तो इतना करने की चेष्टा भी नहीं करते। ऐसा संगीत के प्रायोगिक विषयों गायन, वादन व नर्तन में तो अधिकांशतः होते ही रहता है जहाँ सीखे हुए विषयों की प्रतिदिन पुनरावृत्ति करना अति आवश्यक है।

सामान्यतया कभी कभी ही विद्यार्थी स्वतः दैनिक शिक्षा का अभ्यास करने के लिये उद्यत होते हैं और यदि कदाचित् वे उद्यत हो भी जायें तो मार्ग से बहुत शीघ्र ही विचलित हो कर भटक जाते हैं। आज के विद्यार्थियों का कार्य केवल अध्ययन करना नहीं होता, वरन् उनमें से कइयों के कन्धों पर दायित्वों का भार भी होता है जिससे कि उनके अध्ययन के मार्ग में बाधाएँ आती हैं।

इसके अतिरिक्त आज अच्छे ज्ञान अर्जन से अधिक अच्छी डिग्री पाने को अधिक महत्त्व दिया जाता है, जिस कारण विद्यार्थी उच्चतम् ज्ञान प्राप्ति के स्थान पर उच्च अंक लाने हेतु ही अधिक श्रम करते हैं। उन्हें क्या पढ़ाया जा रहा है इससे उन्हें कोई तात्पर्य नहीं रहता, वे केवल परीक्षाओं में सबसे अधिक अंकों को

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

प्राप्त करना अपना लक्ष्य बनाते हैं और इस लक्ष्य में सिद्ध होने के पश्चात् सब शिक्षा अपने पीछे छोड़ आगे बढ़ जाते हैं।

इसी नियमित क्रिया की हर वर्ष, हर ओर पुनरावृत्ति होती है। जिस कारण शिक्षकों को कई बार, एक बार सिखाये जा चुके विषय को बारम्बार सिखाना पड़ता है। अधिकांश विद्यार्थियों द्वारा अपनाई गई अध्ययन की यह तकनीक आज अभ्यास के नाम से सम्बोधित की जा सकती है।

दूसरी ओर रियाज़, विषय के अध्ययन करने का, उस विषय को समझने का और उसके अभ्यास का एक भिन्न स्वरूप है। पारिभाषिक शब्द रियाज़, आज प्रमुख रूप से संगीत के विषयों से जुड़ा है, किन्तु अतीत में अन्य विषयों के अध्ययन में भी इसके पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया जाता था। रियाज़ का अर्थ है साधना, समर्पण और भक्ति अर्थात् विषय में पूर्ण समर्पण, साधना और भक्ति भाव से तल्लीन हो जाना।

रियाज़ के इन तीन पर्यायवाची शब्दों की स्पष्ट व्याख्या रियाज़ के अर्थ को समझने के लिये आवश्यक है। किन्तु उसके पहले हमें संगीत के महत्व को जानना होगा क्योकि आज इसे भी गलत अवधारणा के साथ समझा व समझाया जा रहा है। संगीत केवल एक मनोरंजन का स्वरूप नहीं है वरन् यह एक ऐसे शिक्षक के रूप में कार्य करता है जो जीवन के अर्थ को समझा सके।

यह तपस्या का एक महानतम् स्वरूप है और मोक्ष प्राप्ति का सीधा मार्ग है, जिसे समर्पण और भक्ति से परिपूर्ण उचित रियाज़ के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। अभ्यास का वह स्वरूप जहाँ विद्यार्थी अपना सर्वस्व भुला कर सम्पूर्ण समर्पण और भक्ति भाव के साथ विषय में तल्लीन हो जाये, वह रियाज़ है। अधिक अंकों की प्राप्ति को महत्त्व न देते हुए केवल सच्चे सम्पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति का लक्ष्य साधने का प्रयास, रियाज़ है।

महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित महान महाकाव्य महाभारत सम्पूर्ण विश्व में प्रसिद्ध है। उसके विभिन्न पात्रों और उनकी महानता, प्रमुख रूप से पाण्डवों को और उनकी महानता को सभी जानते हैं। महाभारत की सम्पूर्ण कथा किसी न किसी रूप में जीवन के विभिन्न अंशों का वर्णन करती है जिनमें से कुछ अंश विद्यार्थी जीवन से सम्बन्धित भी प्राप्त होते हैं। कथा के यह अंश साधना, समर्पण और भक्ति से युक्त अध्ययन की तकनीक के अद्भुत उदाहरणों के रूप में प्रयुक्त किये जा

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सकते हैं और रियाज़ शब्द की व्याख्या करने और उसके अर्थ को विस्तारपूर्वक समझने के लिये भी प्रयुक्त किये जा सकते हैं।

कथा का ऐसा ही एक अंश एकलव्य से सम्बन्धित है जो अपने गुरु के प्रति अपने समर्पण भाव के कारण प्रसिद्ध है। एकलव्य क्षत्रिय नहीं थे वरन् वे निषादराज हिरण्यधनु के पुत्र थे और भील जाति के एक आखेटक समूह से सम्बन्धित थे। इस कारण, सभी कौरव व पाण्डव राजकुमारों के साथ आचार्य द्रोण के सान्निध्य में शस्त्र शिक्षा ग्रहण करने के अधिकारी वह नहीं बन पाये।

किन्तु श्रेणी की यह भिन्नता एकलव्य के धनुर्विद्या की ज्ञान प्राप्ति के लक्ष्य में किसी भी रूप में बाधा नहीं बन पाती। वह प्रतिदिन सभी राजकुमारों को गुरु द्रोण द्वारा दी जाने वाली धनुर्विद्या की शिक्षा की तकनीकों को, प्रमुख रूप से अर्जुन को दी जा रही शिक्षा की तकनीकों को ध्यानपूर्वक देखते और वन में अपने घर लौट जाते, जहाँ उन्होंने गुरु द्रोण की एक प्रतिमा बना रखी थी।

गुरु के चरणों में प्रणाम करने की भांति वह उस प्रतिमा के समक्ष भक्तिपूर्वक नमन करते और उस दिवस आचार्य द्वारा दी गई शिक्षा जिसका उन्होंने अवलोकन किया था उसका अभ्यास बारम्बार करते। यही क्रम प्रतिदिन चलता है और अन्ततः जब आचार्य द्रोण को यह बात ज्ञात होती है तब वे पाते हैं कि एकलव्य ने धनुर्विद्या की समस्त तकनीकों को सूक्ष्मता से ग्रहण कर लिया है।

कथा का यह अंश अपने अध्ययन के प्रति एकलव्य के समर्पण और भक्ति का वर्णन करता है जो अपने रुचिकर विषय के अध्ययन में उनकी सहायता करती है और शिक्षक का समक्ष न होना भी उनके लक्ष्य में बाधा प्रस्तुत नहीं करता है।[1] यह एक प्रकार से आज लोकप्रिय होती दूरस्थ शिक्षा माध्यम का एक स्वरूप है। इस प्रकार यदि कोई सच्चे समर्पण के साथ किसी लक्ष्य को पाने का प्रयत्न करेगा तो कोई भी बाधा उसके मार्ग में नहीं आ पायेगी और वह निश्चित ही अपने लक्ष्य में सफल होगा।

कथा का अगला अंश, अर्जुन से संबंधित है जो महाभारत के अनुसार विश्व के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर है। उनका ध्यान इतना केन्द्रित था कि लक्ष्य की ओर बाण साधने पर उन्हें उस लक्ष्य के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता था। एक बार आचार्य द्रोण अपने सभी शिष्यों की परीक्षा लेने का निर्णय करते हैं और एक एक कर अपने विद्यार्थियों को पेड़ की एक ऊँची डाल पर रखी एक लकड़ी की

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

बनी चील के सिर का (कुछ ग्रन्थ इसे पक्षी की आँख भी वर्णित करते हैं) लक्ष्य साधने के लिये कहते हैं।

लक्ष्य साधने से पूर्व वे उनसे वह सब वर्णित करने बोलते हैं जो उन्हें उस लक्ष्य साधन के समय दिखाई दे रहा हो। सभी राजकुमार अपने समक्ष दिख रहे सम्पूर्ण दृश्य का वर्णन करते हैं किन्तु आचार्य द्रोण उन्हें धनुष बाण रख कर पीछे हटने का आदेश देते हैं। जब यही प्रश्न अर्जुन से किया जाता है तो वे कहते हैं कि उन्हें चील के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं दे रहा।

प्रसन्न होकर आचार्य द्रोण एक क्षण पश्चात् पुनः अर्जुन से पूछते हैं कि अब उन्हें क्या दिख रहा है? अर्जुन उत्तर देते हैं कि अब उन्हें चील के सिर के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं दिख रहा। उत्तर सुन कर हर्ष से भरे गुरु द्रोण, अर्जुन से लक्ष्य साधने को कहते हैं और बाण सही लक्ष्य पर जा लगता है।[2]

कथा का यह अंश अर्जुन के समर्पित और केन्द्रित ध्यान शक्ति का वर्णन करता है जो अन्य सभी बातों को भूल कर केवल अपने लक्ष्य पर ही केन्द्रित रहती है। इस प्रकार यदि कोई समग्र रूप से अपने केन्द्रित लक्ष्य के प्रति समर्पित रह कर उस दिशा की ओर बढ़े तो वह अवश्य ही अपने लक्ष्य को सिद्ध कर पायेगा। यह भी रियाज़ का एक और स्वरूप है।

कथा का अगला अंश भी अर्जुन से ही सम्बन्धित है।

जब पाण्डवों को 12 वर्षों का वनवास प्राप्त होता है तब अर्जुन, दिव्यास्त्रों की प्राप्ति के लिये इन्द्रलोक जाते हैं। सभी दिव्यास्त्रों की विधिवत् शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् जब अर्जुन पुनः धरती पर आने के लिये आतुर होते हैं तब देवराज इन्द्र धरती पर लौटने से पूर्व उन्हें संगीत (गायन, वादन, नर्तन) की विद्या ग्रहण करने का सुझाव देते हुए कहते हैं कि संगीत के ज्ञान के बिना कोई भी विद्या अधूरी है।

अतः अर्जुन, गन्धर्वराज चित्रसेन से यह शिक्षा प्राप्त करना प्रारम्भ करते हैं।[3]

ये अद्वितीय योद्धा, जिन्होंने आज तक नृत्य, गायन और वादन को केवल देखा और सराहा था और जो कला उनकी स्वाभाविक विशेषज्ञता धर्नुविद्या से बिलकुल ही भिन्न थी, उसे, इस लगन, समर्पण, भक्ति और ध्यानपूर्वक सीखना प्रारम्भ करते हैं कि वे संगीत विद्या के इन तीनों आयामों गायन, वादन और नर्तन

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

में भी कुशल रूप से पारंगत हो जाते हैं और पुनः अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल सिद्ध होते हैं।

कुशल नृत्यांगना उर्वशी भी अर्जुन के नृत्य कौशल से भावविभोर हो जाती है और यह कला आगे चल कर अर्जुन को अज्ञातवास काल में वेश परिवर्तित कर छिपने में भी सहायता करती है।

कथा के इस अंश के माध्यम से हम यह देख सकते हैं कि यदि आप किसी भी कला अथवा विद्या को सीखने के लिये दृढ़ संकल्प के साथ अध्ययन कार्य प्रारम्भ करे अवश्य ही अपने लक्ष्य तक पहुँच सकेंगे चाहे वह लक्ष्य कितना ही कठिन और स्वयं की विशेषज्ञता से दूर क्यों न हो। यह रियाज़ का एक भिन्न पहलू है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रियाज़ करने के लिये एक विद्यार्थी को पूर्णतया अपने अध्ययन में केन्द्रित और तल्लीन होना होगा। उसे अपनी विद्या के प्रति भक्ति भाव से समर्पित रहना होगा। गुरु शिष्य परम्परा में रियाज़ पक्ष को महत्व दिया जाता था किन्तु महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में रियाज़ की यह परम्परा घट चुकी है। आज रियाज़ तकनीक का भविष्य विद्यार्थियों के हाथ में है वे चाहे समर्पित रूप से अभ्यास कर इसे बचाये रखें अथवा इसे भुला कर आगे बढ़ जायें।

सभी शिक्षक चाहते हैं कि उनके विद्यार्थियों को उच्चतम ज्ञान प्राप्त हों और सभी शिक्षक इस दिशा में पूर्ण रूप से समर्पित करते हुए कार्य करते हैं, किन्तु जब तक विद्यार्थी इस दिशा की ओर स्वयं आगे नहीं बढ़ेगा और रियाज़ तकनीक से अभ्यास नहीं करेगा तब तक किसी भी शिक्षक की शिक्षा का सम्पूर्ण प्रभाव और ज्ञान अगली पीढ़ी तक पूर्ण रूप से पहुँच ही नहीं पायेगा।

सन्दर्भ :

1. Mahabharat: Aadi Parva – Sambhav Parva, Adhyay 131 - Shloka No.: 32, 33, 34 & 45.
2. Mahabharat: Aadi Parva – Sambhav Parva, Adhyay 132 - Shloka No.: 5, 7 & 8.
3. Mahabharat: Vana Parva –Adhyay 44 - Shloka No.: 6, 7, 10 & 11.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थाईलैण्ड का गौरवशाली महाकाव्य रामाकियेन : एक परिचय

सभी देशों की संस्कृति एवं धरोहर भिन्न होती हैं, किन्तु कई बार हमें किसी ऐसी सौन्दर्यमयी धरोहर को देखते हैं जो हमारी स्वतः की संस्कृति से मेल रखती है और इस कारण हमारे हृदय के समीप आ जाती है। थाईलैण्ड का महान महाकाव्य रामाकियेन हमारे ह्रदय को छूता है क्योंकि यह भारतीय महाकाव्य रामायण की ही कथा को कुछ भिन्न किन्तु अद्भुत अकल्पनीय रूप में प्रस्तुत करता है।

समय काल बीतने के साथ साथ, कई प्राचीन राज्य नष्ट हुए हैं तो वहीं कई नवीन देशों का गठन हुआ है, असंख्य युद्ध लड़े गये हैं और कई मानव जातियों का पूर्णतया पतन हो गया है, किन्तु फिर भी कोई भी युद्ध अथवा मानव निर्मित सीमा रेखा किसी देश की संस्कृति एवं धरोहर को न तो जड़ से समांप्त ही कर सकी है और न ही चार दीवारों के बीच उसे बन्धक बना कर रख सकी है। देश की संस्कृति एवं धरोहर पुष्पों की सुगन्ध, हवाओं और जल की अविरल धारा के रूप में चारों ओर बिखरती बहती रहती है।

भारतीय धार्मिक एवं राजनीतिक विचारों ने ईसा की मृत्यु के पश्चात् दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में फैलना प्रारम्भ किया। इसके साथ ही भारत के पूजनीय महाकाव्यों रामायण और महाभारत ने भी इने देशों के लोगों के धार्मिक एवं राजनीतिक विचारों को प्रेरित करना प्रारम्भ किया।

इन देशों में से एक, थाईलैण्ड को प्रमुख रूप से श्री राम की महागाथा रामायण ने इस चरम सीमा तक प्रभावित किया कि इस देश में अयुत्थया (अयोध्या) नामक राजधानी भी रही और यहाँ के राजाओं के नाम भी राम रखे ज़ाते थे। थाईलैण्ड में रामायण को लोग रामाकियेन के नाम से जानते हैं और वहाँ के कुछ लोगों का मानना है कि इस कथा की उत्पत्ति भारत के स्थान पर वहीं थाईलैण्ड में ही हुई है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

रामायण और रामाकियेन पर शोध करने के पश्चात् शोधकर्ताओं ने यह पाया कि यह कथा रामायण के दक्षिण भारतीय, इन्डोनेशियाई और मलेशियाई संस्करणों से अधिक प्रभावित है।[1]

थाई सिद्धान्तों के अनुसार इसकी कथा में कई परिवर्तन किये गये हैं और इसके हिन्दू धर्म से सम्बन्धित सिद्धान्तों और धार्मिक तत्त्वों को इस कथा से अलग कर दिया गया है। चूँकि थाईलैण्ड बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों से अधिक प्रभावित है अतः राम को एक ऐसे राजकुमार के रूप में देखा जाता है जो पूर्व जन्म में बुद्ध थे।[2] अतः कथा में वही समान पात्र एवं बुराई पर अच्छाई की जीत का मूल सन्देश होने पर भी इसकी व्याख्या और इसके प्रस्तुतिकरण का प्रारूप वाल्मिकी रामायण से कई रूपों में भिन्न है।

थाई साहित्य क्षेत्र में सुखोथाई युग के राजा रामकाम्हेंग के समय काल से हमें रामाकियेन के लिखित कार्य स्वरूप जैसे राम और सीता से सम्बन्धित पत्थरों पर खुदे कई आलेख इस समयकाल के प्राप्त होते हैं। इस महाकाव्य के सबसे प्राचीन स्वरूप के रूप में थोनबुरि के राजा तक्सिन (1767–1782) द्वारा लिखा गया रामाकियेन प्राप्त हुआ है। रामाकियेन का जो सम्पूर्ण व प्राचीन ग्रन्थ हमें प्राप्त होता है वह बैंग्कॉक युग के राजा राम प्रथम के समय काल का है।

थाईलैण्ड की राष्ट्रीय नृत्य नाट्य शैली खोन् अन्य कथाओं की अपेक्षा इसी रामाकियेन की कथा पर होने वाली रोचक प्रस्तुतियों के लिये अधिक प्रसिद्ध है। इन प्रस्तुतियों के लिये राजा राम द्वितीय द्वारा लिखे गये रामाकियेन के संक्षिप्त स्वरूप का प्रयोग अधिक होता है, क्योंकि उन्होंने इसे प्रमुख रूप से प्रस्तुतिकरण के दृष्टिकोण से ही लिखा था। अयुत्थया काल में ये कार्यक्रम महलों के सभाकक्ष में अथवा बारादरियों में मशालों की रोशनी के मध्य राजकीय कलाकार समूह द्वारा प्रस्तुत किये जाते थे।

एक सम्पूर्ण रामाकियेन कथा प्रस्तुति प्रदर्शित करने में कई दिन लगते थे क्योंकि रामाकियेन एक वृहद् ग्रन्थ है जिसमें 311 पात्र हैं। खोन् रामाकियेन प्रस्तुति का सबसे मूलभूत और प्रमुख सिद्धान्त है कि कोई भी प्रस्तुति दुखद अन्त के साथ समाप्त नहीं होनी चाहिये। यदि राम अथवा उनके भाई को युद्ध में आघात पहुँचा है तो प्रदर्शन तब तक चलता रहेगा जब तक वे पुनः स्वस्थ नहीं हो जाते, यहाँ तक कि रावण की मृत्यु का मंचन भी इन प्रस्तुतियों में नहीं किया जाता।[3]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

नाट्य के दुखद अन्त का निषेध और मंच पर मृत्यु के दृश्यों को आचार्य भरतमुनि ने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में भी वर्जित किया है। सम्भवतः रामाकियेन खोन् में सुखद अन्त प्रदर्शित करने की परम्परा नाट्यशास्त्र के नियमों को ही आधारित कर निश्चित की गई हो।

रामाकियेन कथा –

रामाकियेन की कथा स्वर्ग में प्रारम्भ होती है जहाँ दानवीय द्वारपाल नोन्तुक को फ्रा इस्युआन (भगवान शिव) द्वारा एक हीरे की अंगुलि का वरदान प्राप्त होता है, जिसे यदि किसी की ओर इंगित किया जाये जो उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। फ्रा नाराय (भगवान विष्णु) से उसे रोकने की विनती की जाती है और वे एक सुन्दर स्त्री का वेश धर कर छल से नोन्तुक को वह अंगुलि स्वयं की ओर इंगित करने के लिये प्रेरित कर देते हैं जिससे कि उसकी मृत्यु हो जाती है।

यह कथा कई रूपों में मोहिनी भस्मासुर की कथा से प्रेरित दिखती है।

मृत्यु से पूर्व नोन्तुक, फ्रा नाराय (भगवान विष्णु) से कहता है कि वे केवल उसे इसलिये मार सके क्योंकि उनके चार हाथ हैं तब फ्रा नाराय नोन्तुक से कहते हैं कि अगले जन्म में नोन्तुक के बीस हाथ होंगे किन्तु तब भी वह दो हाथों वाले उनके स्वरूप द्वारा मारा जायेगा।[4] इस प्रकार नोन्तुक का पुनर्जन्म लोंग्का (लंका) के राक्षस राजा तोसाकान्थ अथवा तोसाकान् (रावण) के रूप में हुआ, जिसके दस मुख और बीस हाथ थे और जो सामान्यतया एक अच्छा व्यक्ति था किन्तु कभी कभी बुराई की ओर प्रेरित हो जाता था।

दूसरी ओर फ्रा नाराय का जन्म फ्रा राम (श्री राम) के रूप में होता है जो अयुत्थया (अयोध्या) के राजा हैं और बुराई का नाश करने के लिये जन्म लेते हैं। फ्रा लक् (श्री लक्ष्मण) नाग का अवतार और फ्रा राम के आज्ञाकारी भाई हैं। फ्रा सत्रुद् (श्री शत्रुघ्न) शस्त्र के और फ्रा फ्रोत (श्री भरत) चक्र के अवतार हैं और फ्रा राम के छोटे भाइयों के रूप में अवतरित होते हैं। चारों भाइयों का जन्म अयुत्थया के राजा तोत्सरोत् (दशरथ) के घर में होता है।

फ्रा राम की अर्धांगिनी, देवी लक्ष्मी का अवतार सिदा (सीता), तोसाकान्थ और मोन्थो (रावण व मन्दोदरी) की पुत्री के रूप में जन्म लेकर अवतरित होती हैं। जन्म के पश्चात् वह तीन बार "राक्षसों का वध करो" कह कर चिल्लाती है, जिसे सुन तोसाकान्थ के ज्ञानी, सात्त्विक और सन्त भ्राता फिपेक (विभीषण) कहते हैं कि यह कन्या हमारे कुल का नाश करेगी। अतः तोसाकान्थ उसे एक टोकरी में रख

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

कर नदी में बहा देते हैं, जहाँ से वह मिथिला के राजा चानोक (जनक) को प्राप्त होती है।

फ्रा राम और सिदा का विवाह होता है और फिर उन्हें 14 वर्षों का वनवास प्राप्त होता है, जहाँ सिदा को तोसाकान्थ, मारीस (मारीच) की सहायता से हरण कर ले जाते हैं। सिदा को खोजते हुए फ्रा राम और फ्रा लक् को खित्खिन् (किष्किन्धा) के वानर राज सुक्रिप (सुग्रीव) और चोम्पो के वानर राज थाओ महा चोम्पो से सहायता प्राप्त होती है।

हनुमान, सिदा को खोजने जाते हैं और तोसाकान्थ के बगीचे में सिदा को ढूँढ निकालते हैं। समुद्र के ऊपर का सेतु बाँधा जाता है और फ्रा राम की वानर सेना सेतु पार करके तोसाकान्थ की राक्षसी सेना से युद्ध करती है। अन्ततः वानर सेना की विजय होती है और फ्रा राम, तोसाकान्थ का वध करते हैं (यह मंच पर प्रस्तुत नहीं होता)। युद्ध के पश्चात् फिपेक को लोंग्का का राजा बनाया जाता है।

वाल्मिकी रामायण का अन्त सीता के भूमि में समाने से होता है जबकि रामाकियेन के अन्त में अयुत्थया लौटते समय ही सिदा को वन में भेज दिया जाता है, किन्तु अन्त में ईश्वरों द्वारा फ्रा राम और सिदा का पुनः मिलन कराया जाता है। ये सभी परिवर्तन बड़े ही रोचक हैं किन्तु इस सम्पूर्ण कथा के सबसे रोचक और अद्‌भुत पात्र के रूप में समक्ष आते हैं पवन देवता के पुत्र हनुमान (श्वेत वानर)।

भारत में हम हनुमान को पवनपुत्र, परम् रामभक्त, एक योद्धा और ब्रह्मचारी के रूप में जानते हैं। किन्तु थाईलैण्ड के रामाकियेन में हनुमान को एक बुद्धिमान, विश्वसनीय, हंसमुख नायक के रूप में जानते हैं जो फ्रा राम की सेना के सेनापति हैं और साथ ही एक रसिक प्रेमी भी हैं। जब वे जम्हाई लेते हैं तो सूर्य, चन्द्र और तारों को श्वास के साथ अन्दर लेते हैं और फिर बाहर छोड़ते हैं। उनका विवाह भी हुआ है और उनकी पाँच पत्नियाँ हैं, यह मान्यता हनुमान के ब्रह्मचारी होने के भारतीय सिद्धान्त के पूर्णतया विपरीत कथा प्रस्तुत करती है।

फिपेक की पुत्री व तोसाकान्थ की भतीजी बेन्ज्यकायी तथा एक मत्स्या व तोसाकान्थ की पुत्री सुवान्नमच्छा दोनों ही हनुमान की प्रमुख पत्नियाँ हैं और युद्ध में तोसाकान्थ के विपक्ष में फ्रा राम की सहायता करती हैं।[5] हनुमान की इन दोनों पत्नियों से सम्बन्धित कथाएँ इस प्रकार से हैं –

सुवान्नमच्छा[6] – समुद्र पर सेतु बनाने के समय सागर में रहने वाली मत्स्यकन्याएँ वानरों के सेतु निर्माण के कार्य में बाधा डालती हैं, क्योंकि उनकी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

राजकुमारी सुवान्नमच्छा है, जो एक मत्स्या और तोसाकान्थ की पुत्री है। रात्रिकाल में सेतु में जोड़े गये पत्थरों को ये मत्स्यकन्याएँ तोड़ देतीं और चुरा कर ले जातीं। जब हनुमान को मत्स्यकन्याओं द्वारा उत्पन्न इस बाधा का पता चलता है तो वे उन्हें सबक सिखाने का निश्चय करते हैं।

अतः हनुमान, समुद्र के भीतर राजकुमारी सुवान्नमच्छा को पकड़ने के लिये जाते हैं किन्तु जब वे उसे देखते हैं तब वे उस पर मोहित हो जाते हैं और अपने विचार को परिवर्तित करते हुए वे उसे रिझाने का प्रयत्न प्रारम्भ करते हैं। अन्ततः अपने कार्य में सिद्ध होते हुए हनुमान, सुवान्नमच्छा का प्रेम प्राप्त करते हैं और साथ ही फ्रा राम के प्रति सुवान्नमच्छा के हृदय में सुदृढ़ भक्ति भी जागृत करते हैं।

बेन्ज्यकायी[7] – फिपेक की पुत्री और तोसाकान्थ की भतीजी अपने चाचा के आदेशानुसार माया द्वारा सिदा का वेष धारण करती है और मृत होने का अभिनय करती है। इस नकली सिदा का मृत शरीर तब एक लकड़ी के बेड़े पर रखकर फ्रा राम के शिविर की ओर नदी में बहा दिया जाता है। सिदा को मृत देखकर शोक से पीड़ित फ्रा राम युद्ध के अन्त का निर्णय लेते हैं। किन्तु वानर सेनापति हनुमान को तनिक सन्देह होता है क्योंकि लकड़ी का यह बेड़ा नदी की धारा के विपरीत तैरते हुए शिविर तक पहुँचा था, अतः वे फ्रा राम से सिदा का अन्तिम संस्कार करने का आग्रह करते हैं।

जैसे ही सिदा के नकली शव को रखकर अग्नि प्रज्जवलित की जाती है वैसे ही भयभीत होकर बेन्ज्यकायी अपने वास्तविक रूप में आकर उड़ने का प्रयत्न करती है किन्तु हनुमान उसे पकड़ लेते हैं, उसे रिझाते हैं और अन्ततः विवाह कर तोसाकान्थ की कुटिल चाल को न केवल नष्ट करते हैं वरन् युद्ध हेतु एक और सहयोगी भी प्राप्त करते हैं।

कथानक और पात्रों के विवरण में चाहे कैसे भी परिवर्तन हो, किन्तु रामायण की ही भांति रामाकियेन भी परिशुद्ध संस्कृति को ही प्रस्तुत करता है, जिसका आधार भारतीय पुराणों में और जन्म जन्मान्तर से चले आ रहे विश्वास, कि अच्छाई सदा बुराई पर विजय प्राप्त करती है, पर टिका हुआ है। यह बच्चों को अपने जीवन में राम व उनके भाइयों की भांति ही अच्छा और विद्वान बनना सिखाती है।

एक प्रकार से यह भारतीय मूल्यों को ही एक अन्य, भिन्न लेकिन सुन्दर व अद्भुत परिवेश के साथ उजागर करते हैं, जो हमें न केवल सदा ही देखने, सुनने

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और पढ़ने में रोचक तो लगती है वरन् भारतीय सभ्यता, संस्कृति और परम्पराओं के अन्य देशों में हुए विस्तार का भी परिचय हमें देती है।

सन्दर्भ :

1. The Khon; H. H. Prince Dhaninivat & Dhanit Yupho; Promotion and Public Relations Sub-division, Office of Secretariat, Fine Arts Department (2006);
2. http://n68h78.cs.niu.edu
3. The Khon; H. H. Prince Dhaninivat & Dhanit Yupho; Promotion and Public Relations Sub-division, Office of Secretariat, Fine Arts Department (2006);
4. Khon: Masked Dance Drama of Thai Epic Ramakien by Amolwan Kiriwat, M.A. Research Thesis (1997), Chulalongkorn University, Thailand.
5. Ibid.
6. en.wikipedia.org/wiki/Suvannamaccha
7. http://www.thaiembassy.no/News/joe_louis/en_Ramakien.html

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में भारतीय महाकाव्य रामायण

(प्रमुख रूप से कथा पर आधारित)

भारतीय संस्कृति की सुगन्ध इतिहास के न जाने किस प्राचीनतम् समय से मानव सभ्यता द्वारा जाने अनजाने में चारों ओर बिखरती रही है। कई सुदूर देशों में भी हमें भारतीय परम्पराओं की झलक दिखाई देती है। विभिन्न विद्वानों ने इस फैलाव के कई भिन्न कारण बताये हैं। ऐतिहासिक, भौगोलिक और पौराणिक सन्दर्भों में प्राप्त तथ्यों के अनुसार, प्राचीन काल में वर्तमान सीमाओं से भिन्न, भारतीय सीमाएँ अत्यन्त विस्तृत थीं और एक बहुत ही बड़े व्यापक क्षेत्र को अपने अन्दर समेटे हुए थीं।

विभिन्न पुराणों में प्राप्त पौराणिक प्रमाणों के अनुसार प्राचीन भारत जम्बु द्वीप के नाम से जाना जाता था, जिसे राजा सगर के पुत्रों ने तब विखण्डित किया जब वे राजा सगर द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को ढूँढ रहे थे, जो यज्ञ पश्चात् मुक्त छोड़ा गया था। इस घोड़े को देवराज इन्द्र ने राजा सगर के प्रताप से भयभीत होकर चुरा लिया था और कपिल मुनि के भूमिगत आश्रम में बाँध दिया था।

चहुँ ओर की गई अश्व की इस खोज में सगर पुत्रों ने धरती को गहराई तक खोद दिया जिससे जम्बु द्वीप का विभिन्न भागों में विभाजन हो गया और आज प्राप्त कई देशों का निर्माण हुआ। पौराणिक प्रमाणों द्वारा माना जाता है कि सम्पूर्ण दक्षिण पूर्वी एशिया भी इसी पौराणिक भारत अर्थात् जम्बु द्वीप का ही एक भाग था।

भौगोलिक प्रमाणों के अनुसार विभिन्न भूकम्प, बाढ़ एवं अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण भूमि में ऐसी दरारें पड़ीं कि उन्होंने धरती के खण्ड करते हुए मुख्य भारतीय धरा को कई खण्डों में विभाजित कर भारत के समीप समुद्र के मध्य कई द्वीप समूहों का सृजन कर दिया। जावा, सुमात्रा, बाली (इण्डोनेशिया) द्वीप समूह एवं ऐसे ही कई अन्य द्वीप समूह प्राचीन भारत का ही एक अंग माने जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ऐतिहासिक प्रमाणों की दृष्टि से भारत में कई विपदाएँ आयी हैं। सिकन्दर महान से अफगानियों, तुर्कियों, मुगलों और अंग्रेज़ों तक भारत ने कई आक्रमणों का सामना किया जिससे भारत के सांस्कृतिक इतिहास में कई परिवर्तन आये। किन्तु भारतीय सभ्यता ने इन सभी आक्रमणकारियों की विभिन्न सभ्यताओं को अपने भीतर समेट कर अपना बना लिया।

इनमें से कई आक्रमणकारियों ने केवल भारत को लूटा और स्वर्ण, रत्न, स्त्रियों, कुशल कलाकारों और कारीगरों के रूप में अमूल्य सम्पदा को अपने साथ लेकर अपने देश लौट गये पर अन्य कइयों ने भारत को अपना घर बना लिया। दोनों ही रूपों में इन आक्रमणकारियों द्वारा भारत की विभिन्न परम्पराओं का आदान प्रदान और विस्तार हुआ।

कई भारतीय राजाओं ने भी स्वयं की शक्ति बढ़ाने के लिये पड़ोसी देशों पर आक्रमण कर अपने राज्य की सीमाओं को विस्तार दिया। मान्यता यह भी है कि परम्परानुसार बड़े राजकुमार को युवराज रूप में राजगद्दी मिलने के कारण कई बार छोटे राजकुमार पड़ोसी देशों में राज करने के उद्देश्य से वहाँ आक्रमण करते अथवा वहाँ की राजकुमारियों से विवाह कर वहीं बस जाते और अपने साथ ऐसे कलाकार ले जाते जो उन्हें अपनी मातृभूमि का स्मरण कराते थे।

कई बार विवाह सम्बन्धों के आदान प्रदान से, जैसे भारतीय राजकुमारियों का अन्य देशों में ब्याहना, और भूमार्ग व जलमार्ग के द्वारा स्थापित व्यापारिक सम्बन्धों के कारण भी इन सुदूर देशों में भारतीय सभ्यताओं का विस्तार होता रहा।

कारण चाहे जो भी रहे हों, यह सरलता से कहा जा सकता है कि भले ही लोगों के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक विश्वासों में कई परिवर्तन आये हैं, कई प्राचीन राज्यों का पतन हुआ है और नये देशों की स्थापना हुई है, असंख्य भीषण युद्ध लड़े गये हैं, कई जातियाँ लुप्त हो चुकी हैं और कई नये सम्प्रदाय प्रचलन में आये हैं, किन्तु अटूट सत्य यही है कि किसी भी युद्ध अथवा मानव निर्मित सीमा रेखा द्वारा किसी भी देश की सभ्यता को पूरी तरह से नष्ट कर देना अथवा उसके विस्तार को रोकने का प्रयास करना असम्भव है। ये मद्धम, सौम्य और शीतल वायु के अविरल प्रवाह की भांति ही हर ओर प्रवाहित होती हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारतीय परम्पराओं का प्रवाह :

माना जाता है कि ईसा मसीह के मृत्यु काल के पश्चात् लगभग प्रथम शती से ही भारतीय परम्पराएँ मुख्यतः, बौद्ध और हिन्दू परम्पराएँ, दक्षिण पूर्वी एशिया में प्रमुख रूप से थाईलैण्ड, इण्डोनेशिया, कम्बोडिया और म्यांमार व मलेशिया में तीव्रता से फैलने लगीं थीं। सामान्यतः सभी देशों की सभ्यताएँ सदा ही भिन्न होती हैं जो उस देश को अन्य देशों से भिन्न एक अलग व्यक्तित्व प्रदान कर गौरवशाली बनाती हैं।

किन्तु कई बार हमें इन विभिन्न सभ्यताओं में अपनी परम्पराओं की सौन्दर्यमयी झलक भी दिखाई दे जाती है। दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में रहने वाले अनेक निवासी आज कई बौद्ध और हिन्दू परम्पराओं को स्वतः के देश की परम्पराओं के साथ निभाते हैं। सभ्यताओं और परम्पराओं का यह मिश्रण समाज की प्रगति में बाधा नहीं डालता वरन् यह समग्र नवीन स्वरूप अद्‌भुत, सुन्दर और उन्मुक्त रूप से सभी के द्वारा अपनाया जाता है।

महाकाव्य :

भारतीय विचारों के साथ ही परम् पूजनीय भारतीय महाकाव्यों, रामायण और महाभारत ने भी इन देशों के निवासियों के धार्मिक और सामाजिक विचारधाराओं को प्रभावित किया। जिसने भी इन महाकाव्यों को पढ़ा वह इनकी लुभावनी, रोचक और मनमोहक कथा से प्रभावित हुए बिना न रह सका और ये उनके हृदय में समा गये। यदि संक्षेप में इन महाकाव्यों की कथा का वर्णन किया जाये तो कह सकते हैं कि महाभारत भाइयों के बीच होने वाले महाभयावह युद्ध, उससे होने वाले संहार और अन्ततः एक नवीन धर्मपरायण समाज के निर्माण की कथा है और वहीं रामायण की कथा भाइयों के एकदूसरे के लिये किये गये त्याग व बलिदान की गाथा है।

कई लोगों का प्रमुखतः कई भारतवासियों का ऐसा मानना है कि रामायण की कथा से लोगों में भाईचारा और महाभारत गाथा से शत्रुता का फैलाव होता है, किन्तु यह सत्य नहीं है। यह केवल एक मनगढ़ंत वक्तव्य और भ्रमित कल्पना है जो इन दोनों महाकाव्यों के भव्य स्वरूप को नहीं समझाती और इनके वास्तविक गूढ़ सन्देश को प्रकट नहीं कर पाती।

ये दोनों ही महाकाव्य लेखन शैली के अद्‌भुत प्रतिबिम्ब हैं और जन साधारण के सामाजिक, नैतिक और धार्मिक विचारों को पुष्ट करते हुए समाज में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

समन्वय और सामंजस्य बिखेरते हैं। भारत इन महाकाव्यों की जन्मस्थली है किन्तु आज ये पूरे विश्व की मानवीय, सामाजिक, आध्यात्मिक, सैद्धान्तिक और पारम्परिक सम्पदा के रूप में सहेजे जाते हैं।

रामायण :

वैसे तो, इन दोनों ही महाकाव्यों ने दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों को प्रभावित किया, किन्तु यह बिना किसी संशय के कहा जा सकता है कि रामायण के सौम्य कथा प्रवाह ने इन स्थानों में अपना प्रभाव अधिक बिखेरा और सभी के हृदयों में अपना स्थान बनाया। इन देशों के भिन्न सैद्धान्तिक, राजनैतिक और धार्मिक स्वरूप ने रामायण की प्रसिद्धि और विस्तार में कोई बाधा नहीं पहुँचाई।

इसके विपरीत जिस प्रकार इन देशों में रामायण को सहृदयता से अपना लिया गया, उसी प्रकार रामायण ने भी इन देशों के विभिन्न सिद्धान्तों को अपने भीतर आत्मसात कर लिया। कथा में किये गये विभिन्न परिवर्तन इन रामायणों को वाल्मिकी रामायण से पृथक और भिन्न स्वरूप प्रदान करते हैं। इन देशों में प्रचलित रामायण प्रकारों में वाल्मिकी रामायण के अतिरिक्त पूर्वी और दक्षिणी भारतीय रामायण के अंश भी प्राप्त होते हैं जिनके साथ उस देश के धार्मिक और परम्परागत विचारों का अद्‌भुत समन्वय किया गया है जो, कथा को एक नवीन स्वरूप प्रदान करता है। इस प्रकार प्रत्येक देश में कथाओं का परिवर्तन एक दूसरे से भिन्न है। कभी कभी ये परिवर्तन अंश मात्र होते हैं और कभी इतने विपरीत हो जाते हैं कि जो अन्तिम स्वरूप प्राप्त होता है, हम भारतीय उसे रामायण कथा मान ही नहीं पाते।

भारतीय रामायण[1] :

भारत में रामायण को कौन नहीं जानता? प्राचीन काल से आज तक रामायण को कई सन्तों और कवियों ने लिखा है, अतः कथा में परिवर्तन स्वाभाविक है, किन्तु तब भी सामान्य रूप से बिना किसी बड़े परिवर्तन के कथाओं का सार एक ही है । सबसे अधिक प्राचीन और सर्व मान्यता प्राप्त है वाल्मिकी रामायण। तुलसीदास जी का रामचरित मानस और दक्षिण भारत में कविवर कम्बन् द्वारा रचित कम्ब रामायण भी लोकप्रिय रामायण संस्करण हैं।

रामायण के अन्य और भी कई स्वरूप प्राप्त होते हैं जिनके साथ परिवर्तन भी दिखाई देते हैं। जैसे, रामायण के बंगाली संस्करण में कैकेयी की पुत्री कुकुआ, सीता से राक्षस राज रावण का चित्र बनाने को कहती है जिससे राम क्रोध में

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

आकर सीता को वनवास दे देते हैं। किन्तु ऐसे परिवर्तनों के होने पर भी कथा सार प्रायः वही है, सत्य और निष्ठा के साथ जीवन व्यतीत करना, अपनों के लिये सर्वस्व न्यौछावर कर देना और समाज में अपना गौरव स्थापित करना।

रामायण जन साधारण को अति प्रिय है। रामलीला नामक लोकनाट्य शैली तो पूर्णतया रामायण की कथा ही दर्शाती है और माना जाता है कि इसका प्रारम्भ स्वयं सन्त कवि तुलसीदास ने किया था। आज भी देश के विभिन्न भागों में दशहरे के त्यौहार से पहले रामलीला नाटकों का मंचन जगह जगह पर होता है जिसे देखने के लिये देश विदेश से लोग आते हैं और राम सीता आदि का पात्र निभाते बच्चों के चरण स्पर्श कर स्वयं को धन्य मानते हैं। यह रामायण कथा का सौम्य प्रभाव ही है कि जनसाधारण इतने भाव विभोर हो उठते हैं। रामायण दैनिक जीवन का पारम्परिक अंग बन घर घर में बसा है और मन को शान्तचित्त करता है। इस प्रकार से रामायण भारतीय जनमानस का एक अभिन्न अंग वर्षों से रहा है और अनन्त काल तक रहेगा।

भारतीय जनमानस में लोकप्रिय अवधारणा के अनुसार, राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और सीता को क्रमशः भगवान विष्णु, शेषनाग और विष्णु के दोनों अस्त्रों तथा देवी लक्ष्मी का दैवीय अवतार माना जाता है। किन्तु, वाल्मिकी रामायण में राम को प्रमुख रूप से पुरुषोत्तम् अर्थात् सर्वोच्च पुरुष के रूप में वर्णित किया गया है। केवल सीता की अग्निपरीक्षा का वर्णन प्रस्तुत करते अन्तिम श्लोकों में ही एक आकाशवाणी होती है जो राम को उनके दैवीय स्वरूप का आभास कराते हुए उन्हें सीता का परित्याग करने से रोकती है।

इसके विपरीत, रामायण के आगे लिखे गये संस्करणों में राम और सीता को विष्णु और लक्ष्मी के अवतार के रूप में वर्णित किया गया है। पुराणों में राम और उनके तीन भाइयों को विष्णु के अंशावतार के रूप में वर्णित किया गया है। यह वर्णन हमें श्रीमद्भागवद् महापुराण के नवम् स्कन्ध के दशम् अध्याय में भी प्राप्त होता है –

तस्यापि भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः।
अंशांशेन चतुर्धागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः।
रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया।।[2]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

भारत में रामायण की कथा कुछ इस प्रकार से प्रचलित है –

अयोध्या के राजा दशरथ की तीन पत्नियाँ हैं कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी। ईश्वर के वरदान से तीनों रानियाँ, दैवीय अवतार के रूप में अवतरित हुए चार पुत्रों को जन्म देती है। कौशल्या श्रीराम को, सुमित्रा लक्ष्मण और शत्रुघ्न को और कैकेयी भरत को जन्म देती हैं। चारों पुत्रों को धर्मशास्त्रों और शस्त्रविद्या की विधिवत् शिक्षा प्रदान की जाती है। उचित समय पर उनका विवाह सुयोग्य राजकुमारियों, मिथिला के राजा जनक की पुत्रियों और भतीजियों से किया जाता है। राम का विवाह सीता (लक्ष्मी) से, लक्ष्मण का उर्मिला से, भरत का माण्डवी से और शत्रुघ्न का श्रुतकीर्ति से विवाह होता है।

राम को तब अयोध्या का युवराज घोषित किया जाता है। सम्पूर्ण नगरी उत्सव मनाने लगती है केवल कैकेयी की कुबड़ी दासी मन्थरा को यह स्वीकार्य नहीं होता। वह रानी कैकेयी के मन में राम के विरुद्ध विष घोलती है। रानी कैकेयी, राजा दशरथ से पूर्व में दिये गये एक वचनानुसार प्राप्त दो वरदानों में पहले के रूप में भरत को राजसिंहासन और दूसरे के रूप में राम को चौदह वर्षों का वनवास माँगती है।

राम आज्ञा पालन करते हुए तुरन्त वन की ओर प्रस्थान करते हैं, सीता अपने पति का साथ देती हैं और छोटे भाई लक्ष्मण भी अपने बड़े भाई के साथ वन की ओर प्रस्थान करते हैं। पुत्र वियोग में राजा दशरथ का देहावसान हो जाता है और सम्पूर्ण नगरी शोकाकुल हो उठती है। भरत, राम को लौटने का आग्रह करते हैं किन्तु राम के मना करने पर उनकी चरण पादुकाओं को लेकर कार्यकारी अधिकारी के रूप में अयोध्या का राज्य सम्भालने लौट जाते हैं।

पंचवटी के वन में वनवासियों का सामना राक्षसी शूर्पणखा से होता है। राम के रूप से मोहित होकर शूर्पणखा उनसे विवाह का प्रस्ताव रखती है और मना करने पर सीता का वध करने का प्रयत्न करती है। सीता की रक्षा करते हुए क्रोधित लक्ष्मण, शूर्पणखा के नाक और कान काट देते हैं। प्रतिशोध की अग्नि से जलती शूर्पणखा अपने भ्राता लंकाधिपति राक्षसराज रावण के पास पहुँचती है और सीता के अद्भुत सौन्दर्य का बखान कर उसकी जिज्ञासा को जगाती है।

रावण मारीच के साथ सीता को हरने निकल पड़ता है, जहाँ मारीच एक स्वर्ण मृग का रूप धर सीता को अपनी ओर आकर्षित करता है। राम उस स्वर्ण मृग को लाने जाते हैं और जब उन्हें ज्ञात होता है कि वह मायावी राक्षस है तब

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

उसका वध कर देते हैं। किन्तु मृत्यु से पूर्व मारीच, राम की कण्ठ ध्वनि में सीता और लक्ष्मण का नाम पुकारता है जिसे सुन चिन्तित सीता, लक्ष्मण को अपने भाई की सहायता हेतु भेजती है और उसी समय साधु का भेष धर कर रावण, सीता का हरण कर लेता है। रावण के विमान पर उड़ते हुए, शोकाकुल सीता अपने आभूषणों को नीचे फेंकती जाती है जिसे वहाँ रहने वाले वानर एकत्रित कर लेते हैं।

राम व लक्ष्मण, सीता को ढूँढते हुए उस स्थान पर पहुँचते हैं और उनकी भेंट निष्कासित वानर राज सुग्रीव और उनके सबसे विश्वसनीय सेनापति हनुमान से होती है। राम व सुग्रीव के बीच मैत्री स्थापित होती है और राम, सुग्रीव को किष्किन्धा के सिंहासन पर पुनः विराजते हैं। तत्पश्चात् हनुमान की सहायता से वानर सेना सीता को लंका में ढूँढ निकालती है। तब समुद्र पर सेतु बाँधा जाता है और हनुमान और वानर सेना की सहायता से राम राक्षसों को परास्त कर सीता को बचाते हैं।

रावण अपने भाई कुम्भकर्ण, मेघनाद जैसे पुत्रों और समस्त कुल समेत मृत्यु को प्राप्त होता है। रावण के सन्त समान भ्राता विभीषण, सत्य का पक्ष लेने का निर्णय कर युद्ध में राम का साथ देते हैं और युद्ध के अन्त में राम, विभीषण को लंका का राजा बनाते हैं। सीता, राम के पास आदर सहित सकुशल पहुँचाई जाती है, किन्तु अपनी पवित्रता सिद्ध करने हेतु, राम के आदेशानुसार सीता अग्नि प्रवेश करती है। अपनी पवित्रता सिद्ध करने के पश्चात् वे सभी के साथ अयोध्या लौटती हैं।

समय बीतता है और एक दिन राज्य के नागरिक, सीता की पवित्रता व राम के एक अपहृत पत्नी को पुनः अपनाने पर संशय व्यक्त करना प्रारम्भ करते हैं। राम, सीता को वनवास देते हैं (भिन्न ग्रन्थों में वनवास के भिन्न कारण मिलते हैं), जहाँ वह दो पुत्रों लव एवं कुश (कुछ ग्रन्थानुसार सीता दोनों को जन्म देती हैं, वहीं अन्यों के अनुसार कुश का निर्माण ऋषि द्वारा सूखी घास से होता है), को जन्म देती है।

कुछ बड़े होने पर दोनों बालक राम द्वारा किये गये अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को पकड़ लेते हैं और अयोध्या की सम्पूर्ण सेना, अपने तीनों तातश्री (भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न) और हनुमान को भी हरा देते हैं। तब राम उनसे युद्ध करते हैं किन्तु सीता आकर युद्ध रोकती है और दोनों पुत्रों को उनके पिता से मिलाती हैं। राम सीता से क्षमा माँगते हुए उन्हें अयोध्या लौटने का आग्रह करते हैं, किन्तु सीता धरती माता

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

से शरण माँगती हैं। धरा दो भागों मे विभाजित होती है और सीता उसमें समा जाती हैं। राम दुख और प्रसन्नता से भरे अपने पुत्रों सहित अयोध्या लौटते हैं और सही समय आने पर उन्हें राज्य का भार सौंप कर स्वर्ग में अपने निवास स्थान की ओर प्रस्थान करते हैं।

यह भारत में प्रसिद्ध रामायण कथा का संक्षिप्त स्वरूप है, जिसे सभी भक्ति भाव के साथ स्मरण करते हैं। यहाँ कुछ अन्य रामायण कथाएँ और उनसे सम्बन्धित दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों पर होने वाले प्रभाव प्रस्तुत हैं।

दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में रामायण :

मलेशियाई रामायण : मलेशिया में रामायण सम्भवतः छाया नाट्य वायांग कुलित के साथ जावा के व्यापारियों द्वारा पहुँचाया गया। मलेशिया में प्रचलित रामायण की कथा में वहाँ की क्षेत्रीय परम्पराओं,. इस्लामिक व अन्य धार्मिक विचारों और राजनीतिक धारणाओं को भारतीय संस्कृत व लोकगाथाओं के रामायण स्वरूप के साथ मिश्रित करते हुए कई परिवर्तन किये गये हैं।

अन्ततः यहाँ रामायण का एक नया स्वरूप उभर कर आया जिसे हिकायत सेरि राम के नाम से प्रसिद्धि मिली। भारतीय रामायण के विपरीत इसका स्वरूप आध्यात्मिक न हो कर मनोरंजनात्मक है जिसके द्वारा यह सात्विक आचरण, निष्काम प्रेम, निष्ठा और भक्ति का पाठ पढ़ाता है।

रामायण का एक अन्य रूप चेरित महाराज वान भी यहाँ प्राप्त होता है। दोनों ही लगभग 16वीं शती के अन्तिम काल या 17वीं शती के प्रारम्भिक काल में लिखे गये हैं। हिकायत सेरि राम के प्रसंग दो भागों में विभक्त हैं, वे जिनका आधारभूत कथानक से सम्बन्ध है पोकोक (वृक्ष का तना) कहलाते हैं और वे जो अतिरिक्त कथानक जैसे राम व अन्य प्रमुख पात्रों के रोचक कार्यों से सम्बन्धित हैं, वे रैन्टिंग्स (शाखाएँ) कहलाते हैं। ऐसी ही एक रैन्टिंग्स 'सीता देवी दिहलाउ' में सीता से सम्बन्धित ऐसी घटनाओं का वर्णन है जो वाल्मिकी रामायण से पूर्णतया भिन्न हैं।

अपने अपहरण से सकुशल लौट आने के पश्चात् एक बार कैकेयी के उकसाने पर सीता, अपने अपहर्ता महाराज रावण का एक चित्र बनाती है। ईर्ष्या और क्रोध से भरे सेरि राम, सीता को उग्र रूप से मारते हैं और जब सीता अधमरी

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सी हो जाती हैं, तो उन्हें वन भेज देते हैं। कथा के अन्त में सेरि राम जब सीता को वापस लाने का प्रयास करते हैं, तब उन्हें सीता की विभिन्न इच्छाओं की पूर्ति करनी पड़ती है और तत्पश्चात् सीता, सेरि राम के साथ वापस लौटती हैं।[3]

राम और लक्ष्मण का अपहरण कर उनकी बलि देने का प्रयास करते, हनुमान द्वारा अपनी मृत्यु को प्राप्त करने वाले राक्षस भाइयों अहिरावण और महिरावण की कथा (दक्षिणी संस्करण) भी यहाँ हिकायत सेरि राम में पाई जाती है। यह कथा हनुमान के महत्त्व को बढ़ाता है।

किन्तु जो सबसे बड़ा परिवर्तन मलेशियाई रामायण में, मलेशिया की रीतियों के रामायण में सम्मिश्रण के प्रमाण रूप में पाया जाता है वह है–हनुमान को राम व सीता के पुत्र के रूप में प्रदर्शित करना[4], दशरथ को पैगम्बर एडम का प्रपौत्र मानना और ब्रह्मा के स्थान पर अल्लाह द्वारा तपस्या करते रावण को वरदान की प्राप्ति जैसे उल्लेखों का प्राप्त होना।[5]

हिकायत सेरि राम में कुम्भकर्ण की मृत्यु के पश्चात् 40 दिनों का शोक मनाने के निर्देश भी हैं क्योंकि मलेशिया राज्य के राजकीय नियमानुसार सिंहासन के उत्तराधिकारी की मृत्यु के पश्चात् 40 दिनों का शोक मनाना अनिवार्य है, यह वहाँ की परम्परा में रामायण के सरल सम्मिश्रण हेतु किया गया एक अन्य परिवर्तन दर्शाता है।[6] आज भी मलेशिया सुल्तान के द्वितीय पुत्र को आदर सहित लक्ष्मण कहते हैं, राजगद्दी को सिंहासन कहते हैं और देश के राष्ट्रपति सेरि पादुका धुली अर्थात् राम की चरण पादुकाओं की धूल के नाम पर वचनबद्ध हो कर कार्यभार सम्भालते हैं।[7]

इस प्रकार कथानक में नैतिक सिद्धान्तों और मूलभूत असत्य पर सत्य की विजय को दर्शाते हुए भी पात्रों के दैवीय स्वरूप को परिवर्तित कर ईर्ष्या, द्वेषादि दोषों द्वारा मानवीय बनाया गया जिससे कि वे जनसाधारण के और समीप आ सकें। साथ ही कथा में ईसाई और मुस्लिम धर्मों की परम्पराओं को भी इस सूक्ष्मता से सम्मिलित किया गया है कि कथा में न केवल एक नवीनता प्रदर्शित हो वरन् ईसाई और मुस्लिम धर्मों के लोग भी इसे सरलता से अपना सकें।

इन्डोनेशियाई रामायण : जावा, सुमात्रा और बाली, इन्डोनेशिया के प्रमुख द्वीप हैं। यहाँ रामायण कथा में शासकीय राजवंश के अनुरूप केवल कुछ छोटे छोटे परिवर्तन किये गये हैं अन्यथा कथा लगभग अपने पूर्ववर्ती स्वरूप भारतीय रामायण के समान

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

ही है। उदाहरण के रूप में यहाँ भारतीयं रामायण की भांति कुटिल मन्थरा कुरूप कुबड़ी न होकर एक सुन्दरी दासी है जिसका सौन्दर्य सीता के तुलनात्मक है।

साथ ही यहाँ की रामायण में प्रायः श्वेत वानर हनोमान (हनुमान) को एक नायक के रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिनके सहयोग के बिना राम, सीता को ढूँढ ही नहीं पाते। हनोमान केवल एक दूत ही नहीं, वरन् विदूषक और एक अभूतपूर्व निर्भीक योद्धा भी हैं। यहाँ हनोमान को सुग्रीव का भतीजा भी माना जाता है और उन्हें, सुग्रीव की पत्नी का हरण करने वाले राजा वाली का वध करने हेतु सुग्रीव भेजते हैं।[8]

इन्डोनेशिया की नृत्य व नाट्य प्रस्तुतियों में हनोमान (हनुमान) एक अति लोकप्रिय पात्र हैं और कई बार तो राम से भी अधिक प्रिय हैं।[9] यहाँ के कई राजवंशों ने रामायण को अपनी प्रथाओं के अनुरूप परिवर्तित कर अपनाया और बढ़ावा दिया, साथ ही समय के साथ पहले हिन्दू, फिर बौद्ध और फिर इस्लाम धर्मों की परम्पराओं ने रामायण पर अपना प्रभाव छोड़ा। इन राजवंशों में से जावा के शैलेन्द्र वंशी और ईशान वंशी शासक तथा सुमात्रा के श्रीविजय वंश के शासक सर्वप्रमुख हैं। जावा में हमें काकविन रामायण प्राप्त होती है। माना जाता है कि इसकी रचना मध्य जावा में मेदांग राज्य के समयकाल (732–1006 ई.प.) में हुई थी।[10]

यहाँ जो सबसे पहला रामायण का रूपान्तरण मिलता है वह है 9वीं शती ई.प. में प्राचीन जावी भाषा में योगेश्वर द्वारा रचित योगेश्वर रामायण। इसमें संस्कृत और कावी भाषा की मिश्रिण मणिप्रवल शैली में रचे गये 2774 बन्ध मिलते हैं।[11] भट्टीकाव्य के नाम से लोकप्रिय कविवर भट्टी द्वारा रचित् रावण वधम् ने इन्डोनेशिया रामायण को अत्यन्त प्रभावित किया है। बाली में संस्कृत भाषा में 22 बन्धों में रचा रामकवच प्राप्त होता है जिसके कुछ अंश वाल्मिकी रामायण के अंशों के समान हैं।[12]

लाओस रामायण : लाओस में निथान नांग तन्ताई के नाम से प्रसिद्ध पंचतन्त्र कथाओं के साथ रामायण कथा को मिश्रित किया गया है। इन कथाओं का प्रयोग बच्चों को नैतिक शिक्षा देने के लिये किया जाता है। मेंढकों द्वारा सर्प को अपने ताल में शरण देने से मना करने वाली एक ऐसी ही कथा में वह सर्प उन मेंढकों

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

को रामायण की कथा सुनाता है कि किस प्रकार राम ने बिभीसन (विभीषण) को शरण दी थी जबकि वह उनके शत्रु को भाई था।

कथा के सार के रूप में यह सीख समक्ष आती है कि अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर अपने शत्रु को भी शरण देकर उनकी सहायता करना ही सबसे बड़ा मानव धर्म है। इसी प्रकार राम को समुद्र पर सेतु बाँधने में गिलहरियों द्वारा की गई सहायता वाली कथा का प्रयोग यह दर्शाने के लिये किया जाता है कि किस प्रकार छोटे और दुर्बल भी अपनी मेहनत और दृढ़ता से बड़े से बड़ा कठिन कार्य भी सिद्ध कर सकते हैं।

रामायण कथा के अंशों को जिस चतुराई के साथ इन नैतिक कथाओं के साथ जोड़ दिया गया है यह न केवल लेखक की प्रतिभा को स्पष्ट करता है वरन् यह भी दर्शाता है कि बड़ों से लेकर बच्चों तक सभी भारतीय महाकाव्य रामायण की कथा और उसके विभिन्न पात्रों और विभिन्न घटनाओं को जानते भी हैं और साथ ही अपने जीवन के एक अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार भी करते हैं।[13.]

कम्बोडियाई रामायण : कई शतियों के अन्तराल के मध्य, कम्बोडिया की ख्मेर संस्कृति का सृजन, भारतीय संस्कृति और वहाँ की स्थानीय संस्कृति के मिश्रण द्वारा हुआ। रामायण का वास्तविक मूल स्वरूप यहाँ हिन्दू परम्पराओं के साथ साथ दक्षिण भारत से आया पर धीरे धीरे इसमें बौद्ध संस्कृति का सम्मिश्रण अधिक मात्रा में होता चला गया। 16वीं या 17वीं शती में लिखा गया ख्मेर रामायण का साहित्यिक प्रारूप रिएमकर कहलाता है।[14.]

यह रिएमकर का प्रभाव ही है कि कम्बोडिया का प्रमुख कठपुतली छाया नाट्य नांगस्बेक केवल रिएमकर की कथाओं को और राम के जीवन के विभिन्न अंशों को प्रस्तुत करता है। थाईलैण्ड की रामायण का प्रभाव भी नांगस्बेक पर हुआ है जिस कारण कम्बोडिया और थाईलैण्ड दोनों ही देशों के रामायण स्वरूपों में कई समानताएँ प्राप्त होती हैं।[15.]

यहाँ कथा लगभग भारतीय रामायण के समान ही है किन्तु कुछ अतिरिक्त पात्र भी पाये जाते हैं जिनका वर्णन भारतीय रामायण में प्राप्त नहीं होता है। कथा राजकुमार फ्रिया रियाम (श्रीराम) के चारों ओर घूमती है जिन्हें बिना किसी अपराध व दोष के चौदह वर्षों के लिये वन की ओर निष्कासित कर दिया जाता है। उनके छोटे भाई फ्रिया लियाक (श्री लक्ष्मण) उनके साथ जाते हैं।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

वन में राक्षसी सोफानखा उन्हें आकर्षित करने का प्रयास करती है और क्रिया लियाक उसकी नाक काट देते हैं। कई रोचक घटनाओं जैसे सोफानखा के दुष्ट विशाल राक्षस भाई रियप (रावण) द्वारा क्रिया रियाम की पत्नी नियांग सेदा (सीता) का अपहरण, सुक्रीप (सुग्रीव) और हनुमान के नेतृत्व में वानर सेना के साथ नियांग सेदा का रक्षण आदि के पश्चात् अन्ततः क्रिया रियाम विजयी होकर अपने राज्य लौटते हैं और सिंहासन पर विराजमान होते हैं।

रिएमकर की कथा में कई ऐसे कथा अंशों और नवीन रचनाओं को सम्मिलित किया गया है जो कि पूर्णतया कम्बोडिया और अन्य दक्षिण पूर्वी देशों की संस्कृति को प्रमुखता से प्रदर्शित करते हैं। उदाहरणार्थ, भारतीय साहित्यों और प्रस्तुतियों में प्रदर्शित नहीं की जाने वाली एक ऐसी ही कथा है हनुमान और सोवान मच्छा (जलपरी) के मिलन की कथा।

सागर पर सेतु बनाते समय हनुमान पाते हैं कि समुद्र में निवास करने वाली जलपरियाँ पत्थर चुरा कर सेतु निर्माण में बाधा डाल रही हैं। वे जलपरियों की राजकुमारी नियांग सोवान्न मच्छा को बन्दी बनाने का निर्णय करते हैं किन्तु इसके विपरीत वे उससे प्रेम करने लगते हैं। राजकुमारी नियांग सोवान मच्छा भी उनके प्रेम को स्वीकार करती है और उसकी जलपरियों की सेना सेतु बाँधने के कार्य में विघ्न उत्पन्न करना समाप्त कर देती है।[16]

रिएमकर में विश्वास, निष्ठा, प्रेम, प्रतिशोध आदि भाव नाटकीय रूप में प्रस्तुत किये गये हैं। क्रिया रियाम को हिन्दू ईश्वर विष्णु का अवतार अवश्य माना गया है किन्तु राम को ईश्वर मानने वाले भारतीय विश्वासों के विपरीत जाते हुए, कम्बोडिया में उनका स्वरूप एवं कथा में वर्णित अन्य पात्रों का स्वरूप भी दैवीय न होकर मानवीय ही दर्शाया गया है।

कथा के पात्रों में शक्ति और दुर्बलता का यह क्लिष्ट सम्मिश्रण मानव के सहज सामाजिक व्यवहार को दर्शाता है और इस कारण से कथानक व पात्रों को जनसाधारण के और अधिक निकट लाता है। इन्हीं सूक्ष्म परिवर्तनों के द्वारा समाज में सरल रूप से रामायण को अपनाया गया है।

म्यांमार में रामायण [17, 18,19] म्यांमार की संस्कृति भारतीय, ख्मेर और थाईलैण्ड की संस्कृतियों से प्रभावित है। भारत के अतिरिक्त रामायण यहाँ सियामिस (थाई) बन्धकों के साथ ही बन्धक बनाकर लाये गये नाट्य कलाकारों की नाट्य कलाओं

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

द्वारा पहुँचा। ये ऐसे नाट्य कलाकार बन्धक थे, जो राजाओं के मनोरंजन हेतु कठपुतलियों द्वारा और विभिन्न कलात्मक मुखौटे लगाकर रामायण कथा को प्रस्तुत किया करते थे।

धीरे धीरे ये प्रस्तुतियाँ इतनी लोकप्रिय हो गईं कि देश के कोने कोने तक पहुँच गई और साथ ही स्वाभाविक रूप से रामायण कथा को भी जनमानस के बीच प्रसिद्ध करती गईं। म्यांमार रामायण, यामा ज़ात्द्वा के नाम से प्रसिद्ध है। पूर्व में बर्मा में रामायण को यामायना कहते थे और वहीं ज़ात्द्वा का तात्पर्य है, वह जो तेरावद बौद्ध धर्म की जातक कथाओं का एक अंश हो।

यहाँ म्यांमार में बौद्ध संस्कृति का प्रभाव अधिक होने के कारण राम को विष्णु के स्थान पर बुद्ध का अवतार माना गया है और इसी कारण उन्हें पूजनीय भी माना जाता है। यह परिवर्तन समाज में राम को सरलता से और धार्मिक रूप से अपनाने में सहायता प्रदान करता है।

रामायण की मौखिक परम्परा यहाँ राजा अनवर्त (1044–1077 ई.प.) के समयकाल में प्रारम्भ हुई। बर्मा साहित्य के, 1527 ई.प. से पूर्व के साहित्यिक प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि लगभग उस समय काल से ही हनुमान चिर परिचित पात्रों में से एक थे।

1775 ई.प. में यू ऑन्ग फ्यो द्वारा रामा सा ख्यान अथवा रामा थाझिन अर्थात् राम के गीत की रचना की गई थी जो भारतीय वाल्मिकी कृत रामायण की ही भांति बाल काण्ड से प्रारम्भ होकर युद्ध काण्ड पर अन्त होती है।

म्यांमार रामायण का एक और स्वरूप हमें 1877 ई.प. में ताड़ के पत्तों पर लिखे गये राम वत्तु अर्थात् राम की कथा के रूप में प्राप्त होता है। रामायण की नाटकीय प्रस्तुतियाँ कान्बाँग राज्यकाल (1752–1885 ई.प.) में प्रारम्भ हुई, जब राज्यमंत्री म्यावाद्दी मिंझी यू सा ने बर्मा के शास्त्रीय नाट्य यामा ज़ात प्वे के माध्यम से रामायण प्रस्तुत करने के लिये कथानक, गीत और संगीत की रचना की।

यहाँ कथाओं में राम को एक महानायक के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिनका विवाह सुन्दर राजकुमारी सीता से होता है और रावण दसगिरि के नाम से लोकप्रिय है। साथ ही सुनहरे मृग की कथा में मारीच के स्थान पर दसगिरि की बहन सीता के हरण हेतु स्वर्ण मृग का रूप धर अपने भाई की सहायता करती है।

इस प्रकार इन सूक्ष्म परिवर्तनों के साथ कथा को स्थानीय संस्कृति से जोड़ते हुए सम्पूर्ण समाज में लोकप्रिय बनाया गया है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

थाईलैण्ड रामायण : थाईलैण्ड में रामायण को रामाकियेन के नाम से जानते हैं और वहाँ के जनसाधारण की मान्यता के अनुसार रामायण का उद्भव भारत में नहीं वरन् थाईलैण्ड में ही हुआ था। रामायण की तुलना में, रामाकियेन की कथा में भी थाई मान्यताओं के अनुरूप कई प्रमुख परिवर्तन किये गये हैं जिसके द्वारा कथा के धार्मिक स्वरूप को हटाया गया है।

थाईलैण्ड में बौद्ध धर्म के अधिक प्रभावशील होने के कारण राम को एक थाई राजकुमार माना गया है जो पूर्व जन्म में बुद्ध थे।[20] सुखोथाई वंश के राजा रामकाम्हेंग के समय काल से सम्बन्धित, शिलालेखों पर उकेरे गये राम सीता से सम्बन्धित अंशों से प्राप्त प्रमाणों के आधार पर उस समयकाल में भी रामाकियेन साहित्यिक कृतियों के रूप में प्रचलित था। रामाकियेन का प्राचीनतम संस्करण जो प्राप्त हो पाया है वह थोनबुरी काल के राजा ताक्सिन (1767–1782) द्वारा लिखा गया है। रामाकियेन का जो एकमात्र पूर्ण संस्करण प्राप्त है वह, बैंग्कॉक युग के राजा राम प्रथम द्वारा रचित है।[21]

रामाकियेन की कथा का प्रारम्भ स्वर्ग में होता है जहाँ नोन्तुक नामक एक दैत्य द्वारपाल का वध फ्रा नाराय (विष्णु) द्वारा किया जाता है और वह धरती पर तोसाकान्थ (रावण) के रूप में पुनर्जन्म लेता है। मृत्यु से पूर्व नोन्तुक यह आरोप लगाता है की फ्रा नाराय चार भुजाएँ होने का कारण ही उसका वध कर पाये तब फ्रा नाराय उसे कहते हैं कि वह 20 हाथों के साथ पुनः जन्म लेगा किन्तु तब भी वह उनके दो भुजाओं वाले स्वरूप द्वारा मारा जायेगा।[22]

इस प्रकार तोसाकान्थ का दस मुखों और बीस हाथों के साथ जन्म होता है। लोंग्का (लंका) का यह राक्षसराज एक सद्प्रवृत्ति का व्यक्ति है जो कभी कभी दुष्प्रवृत्ति का बन जाता है। फ्रा नाराय का जन्म अयुत्थया (अयोध्या) के राजा तोत्सरोत् (दशरथ) के घर फ्रा राम (श्री राम) के रूप में होता है। फ्रा राम के छोटे भाइयों के रूप में, फ्रा लक् (श्री लक्ष्मण) नाग के, फ्रा सत्रुद् (श्री शत्रुघ्न) शस्त्र के और फ्रा फ्रोत (श्री भरत) चक्र के अवतार बन अवतरित हुए।[23]

देवी लक्ष्मी का अवतार सिदा (सीता) तोसाकान्थ (रावण) और मोन्थो (मन्दोदरी) की पुत्री के रूप में जन्म लेती हैं किन्तु उनका परित्याग कर दिया जाता है और वह मिथिला नरेश चानोक (जनक) को प्राप्त होती हैं। समय बीतने के साथ उनका विवाह फ्रा राम के साथ होता है। विवाह के पश्चात् कुछ कारणों से फ्रा राम

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

और सीदा को 14 वर्षों का वनवास होता है, जहाँ मारीस (मारीच) की सहायता से तोसाकान्थ सीदा का हरण कर लेते हैं।

सीदा की खोज में निकले फ्रा राम और फ्रा लक् दो वानर राजाओं, खित्खिन् (किष्किन्धा) के सुक्रिप (सुग्रीव) और चोम्पो के थाओ महा चोम्पो से मैत्री सम्बन्ध स्थापित करते हैं। वीर योद्धा हनुमान, सीदा को तोसाकान्थ के बगीचे में ढूँढ निकालते हैं। समुद्र के ऊपर सेतु बाँधा जाता है और फ्रा राम की वानर सेना सेतु पार कर तोसाकान्थ की सेना से युद्ध करती है। अन्ततः फ्रा राम, तोसाकान्थ का वध करते हैं और युद्ध में विजयी होने के पश्चात् वे फिफेक (विभीषण) को लोंग्का का राजा बनाया जाता है।

भारत में रामायण का अन्त सीता के भूमि में समाने से होता है जबकि रामाकियेन के अन्त में अयुत्थया लौटते समय ही सीदा को वन में भेज दिया जाता है, जब एक राक्षसी छल से सीदा से तोसाकान्थ का चित्र बनवा लेती है। फ्रा राम को सन्देह होता है कि सीदा उनके प्रति समर्पित नहीं रही अतः वे फ्रा लक् को सीदा का वध करने का आदेश देते हैं, किन्तु फ्रा लक्, सीदा को वन में छोड़ आते हैं।

इन्द्र एक भैंसे के रूप में सीदा की ऋषि वाचामारुक् के आश्रम तक पहुँचने में सहायता करते हैं, जहाँ, वे फ्रा राम के पुत्र मोंग्कुट को जन्म देती हैं। तब मोंग्कुट के साथी और भ्राता के रूप में ऋषि, माया द्वारा लोप नामक एक बालक का निर्माण करते हैं।[24]

अन्ततः कई घटनाओं के पश्चात् जैसे अयुत्थया में मोंग्कुट का बन्दी बनना, लोप का अपने भाई को छुड़ाना और फ्रा राम का दोनों बालकों से युद्ध करना आदि के बाद अन्त में फ्रा राम को सत्य ज्ञात होता है, वे अपने पुत्रों को स्वीकारते हैं और ईश्वरों द्वारा फ्रा राम और सिदा का पुनः मिलन कराया जाता है। थाईलैण्ड के रामाकियेन में हनुमान को एक नायक माना जाता है, जो न केवल चतुर, निष्ठावान और वीर योद्धा है वरन् एक विलासी प्रेमी भी हैं।

हनुमान के ब्रह्मचारी होने के भारतीय विश्वासों को पूर्णतया खण्डित करते हुए थाईलैण्ड रामाकियेन के हनुमान एक नहीं अपितु पाँच विवाह करते हैं। तोसाकान्थ की भतीजी अर्थात् फिफेक (विभीषण) की पुत्री बेन्यकाई तथा तोसाकान्थ एवं एक मत्स्या की पुत्री सुपानमच्छा दोनों ही हनुमान की पत्नियाँ हैं और युद्ध में राम की सहायता करती हैं।[25]

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सभी रामायणों में प्राप्त समान तथ्य :

- राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न एवं सीता सभी दैवीय अवतार हैं।
- राम को वनवास भेजने के पीछे कैकयी कारण बनती है।
- राम, सीता और लक्ष्मण वनवास में 14 वर्ष बिताते हैं।
- स्वर्ण मृग/बकरी अथवा मृग शावक राम को सीता से दूर ले जाता है।
- सीता का हरण ऋषि के वेश में रावण द्वारा किया जाता है।
- सीता को ढूँढने में वानर सेना राम की सहायता करती है।
- रावण की वाटिका हनुमान द्वारा नष्ट की जाती है जिनकी पूँछ में आग लगा दी जाती है जिसके कारणवश सम्पूर्ण लंका नगरी जल के भस्म हो जाती है।
- वानर सेना के समुद्र पार कर लंका पहुँचने हेतु समुद्र पर एक सेतु का निर्माण किया जाता है।
- राम और सीता एक उड़ने वाले रथ पुष्पक विमान पर घर लौटते हैं।
- सीता को वन की ओर निष्कासित किया जाता है।
- सीता ,राम के पुत्र को जन्म देती है और ऋषि उसके जुड़वाँ भाई के रूप में घास से एक अन्य बालक का निर्माण करते हैं।

सभी रामायणों में प्राप्त मुख्य विषमं तथ्य:

- राम का बुद्ध के अवतार के रूप में वर्णन करना।
- दशरथ को पैग़म्बर एडम के पुत्र के रूप में वर्णित किया गया है।
- मन्थरा को एक सुन्दर स्त्री के रूप में वर्णित करना।
- सीता को रावण और मन्दोदरी की पुत्री के रूप में वर्णित करना। (यह वर्णन भारतीय रामायण के कई लोकगाथा स्वरूपों में भी प्राप्त होता है किन्तु जनसाधारण में मान्य नहीं है।)
- रावण को अल्लाह द्वारा वरदान की प्राप्ति होना।
- हनुमान को केवल एक आज्ञाकारी सेवक और रामभक्त होने के स्थान पर एक प्रमुख वीर नायक के रूप में वर्णित करना।
- ब्रह्मचारी हनुमान का कई स्त्रियों से विवाह कर उन्हें पत्नियों के रूप में स्वीकार करना।
- रावण का एक मछली द्वारा एक पुत्री को जन्म देना।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

- सीता को वन की ओर निष्कासित करने के समय और उसके पीछे के कारण में विभिन्न अन्तर की प्राप्ति।
- सीता का भूमि में समाने के स्थान पर, राम और सीता का पुनः मिलन होना।

दक्षिण पूर्वी देशों में रामायण का प्रभाव :

- थाईलैण्ड के राजाओं को राम की उपाधि दी जाती थी और देश में एक राजधानी का नाम ही अयुत्थया (अयोध्या) था।
- इन्डोनेशिया में आज भी बच्चों के जन्म के समय पवित्र रीतियों के एक अंश के रूप में रामायण के श्लोकों का पाठ कावी भाषा में किया जाता है।
- विद्यालयीन शिक्षा में पाठ्यक्रम का एक अभिन्नं अंगं रामायण कथाएँ हैं।
- दक्षिण पूर्वी एशिया के लगभग सभी नाट्य कलाओं द्वारा प्रस्तुत कथानकों में स्थानीय लोक कथाओं के साथ साथ रामायण कथाएँ भी एक प्रमुख अंग है। इन नाट्य कलाओं में मानवीय नाट्य प्रस्तुतियाँ और कठपुतलियों द्वारा सजीव व छाया नाट्य प्रस्तुतियाँ भी सम्मिलित हैं। कुछ प्रसिद्ध नाट्य शैलियाँ हैं –
  - थाईलैण्ड का खोन्।
  - इन्डोनेशिया के वायांग कुलित (चर्मपुतली छाया नाट्य), वायांग गोलेक (पुतली नाट्य) और वायांग ओरांग (मानवीय नाट्य)।
  - म्यांमार के योख्ते प्वे (कठपुतली नाट्य), यामा ज़ात प्वे और मुखौटेदार मानवीय नाट्य प्रस्तुतियाँ।
  - कम्बोडिया के नांगस्बेक (विशाल कठपुतली नाट्य) और इन्डो चीनी नाट्य।
- नाट्य कलाओं में रामायण की प्रस्तुतियों के भिन्न पात्रों को प्रदर्शित करने हेतु विभिन्न प्रकार के मुखौटों और कठपुतलियों का प्रयोग होता है जिनके निर्माण कार्य द्वारा कई कारीगरों को जीविका के साधन और धनार्जन के अवसर प्राप्त हुए हैं।
- कई मन्दिरों की दीवारों पर अंकित भित्ति चित्रों में रामायण के विभिन्न दृश्यों को जिस कुशलता से दर्शाया गया है, वह स्पष्ट करता है कि रामायण इन देशों का कितना अभिन्नं अंग बन चुका है। कुछ स्थानों पर तो सम्पूर्ण रामायण को दीवारों और छतों पर उकेरा गया है। कुछ प्रसिद्ध मन्दिर इस प्रकार हैं –

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

- जावा, इन्डोनेशिया के प्रम्बनन् मन्दिर में प्रारम्भ से लेकर वानरों के लंका पहुँचने तक की रामायण कथा को दर्शाते हुए 42 पट्ट हैं।[26]
- थाईलैण्ड के एमरल्ड (पन्ना) बुद्ध मन्दिर में सम्पूर्ण रामायण कथा को दर्शाते भित्ति चित्रों के 178 खण्ड हैं।
- थाईलैण्ड के बीमेय मन्दिर के एक खण्ड चित्र या सरदल (lintel) में इन्द्रजीत द्वारा राम लक्ष्मण को मायावी सर्पों द्वारा बान्धने का दृश्य अंकित है।
- कम्बोडिया के अंग्कोर वाट मन्दिर में सम्पूर्ण रामायण को नक्काशी द्वारा अंकित किया गया है। इनमें सबसे अद्‌भुत दृश्यांकन युद्ध दृश्यों और सीता की अग्नि परीक्षा के अंशों आदि का है।
- कम्बोडिया के बन्ताई स्रेई मन्दिर में एक दृश्य नक्काशी में राम द्वारा बाली को बाण से वेधने का वर्णन प्रस्तुत करता है।[27]

निष्कर्ष :

रामायण, दक्षिण पूर्वी देशों में निवास करने वाले लोगों के दैनिक जीवन का एक अटूट अंग बन गया है। इस कथा के ताने बाने उनकी स्थानीय परम्पराओं और संस्कृति में इस सूक्ष्मता से बुने गये हैं कि उन्हें अलग कर पाना पूर्णतया असम्भव है। वहाँ रामायण, अपने आध्यात्मिक गुणों से अधिक नैतिक मूल्यों, सम्मान, एकता, गरिमामयी आचरण, स्वदेश के प्रति कर्तव्य परायणता और सभी के प्रति आदर भाव प्रकट करने वाले आदर्शों को व्यक्त करने वाले अभूतपूर्व प्रतीक के रूप में अधिक लोकप्रिय और प्रसिद्ध है।

रामायण आधुनिक नवीन पीढ़ी के समक्ष, राम के रूप में एक आदर्श पुत्र, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न के रूप में आदर्श भाई, सीता के रूप में आदर्श नारी तथा हनुमान के रूप में आदर्श भक्त के गुण प्रस्तुत करता है। पश्चिमी देशों के कुछ विद्वानों को आश्चर्य होता है कि एक ऐसी पौराणिक कथा जो माया और मायावी प्राणियों से भरपूर है वह इतने सारे देशों के निवासियों को कैसे लुभा सकती है? कैसे इतने सारे देशों की संस्कृति का अटूट अंग बन सकती है?

एक शीर्ष विद्वान ने रामाकियेन के इस अद्‌भुत लोकप्रिय स्वरूप के बारे में अपने विचार लिखते हुए कहा है –

"पाश्चात्य जनों, जिनके लिये शेक्सपियर के लेखन कार्य में और बाईबल में माया अथवा जादू न केवल विश्वासों में वरन् सराहना में भी बाधा प्रस्तुत करता है, उनके

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

लिये रामाकियेन का प्रभाव और लोकप्रियता निःसन्देह समझ से परे होगा। कैसे इस प्रकार का कोई लेखन कार्य जिसमें माया और दैवीयता इतनी अधिक है कि यह संसार से बिल्कुल भिन्न और परे है किन्तु तब भी थाई जनता पर इसका इतना प्रभाव किस प्रकार है, वे यह कल्पना ही करते रह जायेंगे..........'[28]

इस प्रश्न का उत्तर सम्भवतः इस प्रकार दिया जा सकता है कि, रामायण एक ऐसी कथा है जो हर आयु के लोगों और भिन्न दृष्टिकोण रखने वाले लोगों को भी अपनी ओर आकर्षित कर सकती है। किसी को इसका आध्यात्मिक पक्ष रुचिकर लगता है तो किसी को यह केवल कथा के रूप में ही रोचक लगता है, कोई किसी पात्र में स्वयं को ढूँढ लेता है तो कोई कथा पर शोध करने लगता है।

कारण चाहे जो हो आज रामायण भारत के अतिरिक्त दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों और कुछ रूप में पश्चिमी देशों में भी प्रतिष्ठित हो चुका है।

मलेशिया का प्रमुख धर्म इस्लाम है, थाईलैण्ड, कमबोडिया और अन्य देशों में बौद्ध धर्म का अधिक प्रचार है, कुछ स्थानों पर ईसाई धर्म ने अपना प्रभाव छोड़ा है, किन्तु फिर भी रामायण ने इन सभी देशों पर जो वैश्विक पकड़ बनाये रखी है वह अद्भुत है और यह दर्शाती है कि नैतिकता और सच्चाई का पाठ पढ़ाने वाले किसी भी अभूतपूर्व साहित्य को, चाहे वह किसी एक धर्म से ही सम्बन्ध क्यों न रखता हो, उसे सम्पूर्ण विश्व में फैलने से कोई धार्मिक सीमा रेखा नहीं रोक सकती।

कथा में चाहे जैसे भी परिवर्तन किये गये हों, रामायण एक परिशुद्ध सभ्यता के स्वरूप को प्रस्तुत करता है, जिसकी जड़ें भारतीय पौराणिक मान्यताओं में और इस प्राचीन विश्वास में टिकी हैं कि सत्य की असत्य पर सदा विजय होती है, जिससे बच्चों को यह शिक्षा प्राप्त होती है कि जीवन में उन्हें राम व उनके भाइयों की भांति सच्चा एवं विद्वान बनना चाहिये।

एक प्रकार से इन देशों की रामायण भारतीय परम्पराओं के सूक्ष्म स्वरूप को एक नवीन किन्तु उसी प्रकार के सौम्य और सुन्दर आवरण के साथ प्रस्तुत करती हैं, जो पढ़ने अथवा देखने में सदा ही रोचक है, सदा हमें लुभाता है और भारतीय संस्कृति और सभ्यता के विशाल स्वरूप को और अन्य देशों में उसके विस्तार को समझने में भी सहायता करता है।

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

सन्दर्भ :

1. The Valmiki's Ramayana.
2. Shrimadbhagvata Mahapurana
3. http://orias.berkeley.edu/SEARama/RamaMalaysia.htm
4. http://cj.my/yuthra/?p=164
5. The Effect of Ramayana on various Cultures and Civilisations, Dr. Gauri Mahulikar pg. 2.
6. The Literary version of Rama story in Malay, article in CIRSW by S. Singaravelu.
7. http://cj.my/yuthra/?p=164
8. www.blogs.transparent.com/indonesian/indonesian-ramayana/
9. Ibid.
10. Natyashastriya Abhinaya: Sidhant evam Prayog ; Dr. Archana Agrawal; Publication by Sampoornanada Sanskrit University, Varanasi ; 2007
11. The Effect of Ramayana on various Cultures and Civilisations, Dr. Gauri Mahulikar pg. 2.
12. Sanskrit Texts and Indian Religion in Bali by T. Goudriaan pg. 562.
13. The Story of Rama in Lao Folktale, Kusum Rakasmani, pg. 72.
14. http://www.asiasociety.org
15. http://www.wikipedia.org
16. http://www.asiasociety.org
17. http://www.wikipedia.org
18. https://en.m.wikipedia.org/wiki/Yama_Zatdaw
19. www.wdl.org/en/item/14285/
20. Khon: H. H. Prince Dhaninivat and Dhanit Yupho pg. 10.
21. http://www.mahidol.ac.th
22. The Khon: H. H. Prince Dhaninivat and Dhanit Yupho pg. 25.
23. http://n68h78.cs.niu.edu
24. http://orias.berkeley.edu/searama/ramathailand.htm
25. Khon: Masked Dance Drama of Thai Epic Ramakien by Amolwan Kiriwat, M.A. Research Thesis, Chulalongkorn University, Thailand. pg. 6

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

26. The Effect of Ramayana on various Cultures and Civilisations, Dr. Gauri Mahulikar pg. 5.
27. Ibid.
28. Cadet, pg 24.

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi

CC0. In Public Domain, Digitizagtion by eGangotri

यह पुस्तक लेखिका के नृत्य और नाट्य से संबंधित विभिन्न लेखों का संग्रह है। इसमें मुख्यतः भरतनाट्यम् के अडवु और हस्त मुद्राओं से संबंधित लेख, साथ ही संस्कृत नाट्य भास एवं कालिदास के नाटक तथा दक्षिण पूर्वी एशियाई देशों में रामायण संबंधित लेख भी हैं। यह पुस्तक विद्यार्थियों को नेट अध्ययन में सहायक हो, इस बात को ध्यान में रख कर सरल भाषा में लिखी गई है।

सिंगार मणि सुश्री पी. मेदिनी होम्बल भरतनाट्यम् नृत्य विधा में होम्बल परिवार की तीसरी पीढ़ी की प्रमुख नृत्यांगना हैं। नृत्य शिक्षा माता-पिता माला, प्रेमचन्द होम्बल एवं दादा-दादी स्व. श्री शंकर, श्रीमति गिरिजा देवी होम्बल से प्राप्त की एवं विशेष शिक्षा, पद्मभूषण स्व. रुक्मिणी देवी अरुण्डेल की प्रसिद्ध संस्था कलाक्षेत्र चेन्नई से प्राप्त की। स्नातक उपाधि काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी से एवं स्नातकोत्तर उपाधि स्वर्ण पदक सहित इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, (छत्तीसगढ़) से प्राप्त की। विगत आठ वर्षो से इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय, खैरागढ़, (छत्तीसगढ़) में कनिष्ठ आचार्य के पद पर कार्यरत हैं। भरतनाट्यम् की कुशल नृत्यांगना, नृत्य निर्देशिका व शिक्षिका के साथ, लेखन का कार्य भी करती हैं।

Luminous Books
Varanasi

ISBN 978-93-8514-972-6
9 789385 149726
संगीत/नृत्य/नाट्य ₹ 495/-

Dr. Urmila Sharma Collection, Varanasi